

भारतीय देव परम्परा

वैदिक देव परम्परा :

भारतीय संस्कृति में जीवन का मूलाधार धर्म हैं। धर्म शब्द से एक तरफ जहाँ दैनन्दिन जीवन में उपयोगी कर्तव्यों से अभिप्राय ग्रहण किया जाता है। वहीं दूसरी तरफ विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों से। भारत सभ्यता के आदिम काल से ही विभिन्न धर्मों का उद्गम स्थल रहा है। यहाँ हिन्दू धर्म की वैदिक पौराणिक तथा शाक्त, जैन, बौद्ध आदि विभिन्न शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय धार्मिक विचाराधारा का उन्मेष सिन्धु घाटी की सम्यता के युग में सर्वप्रथम दृष्टिगत होता है। किन्तु प्राचीन भारत में धार्मिक विकास के सम्बन्ध में एक सुनिश्चित जानकारी सर्वप्रथम आर्यों के वैदिक साहित्य से प्राप्त होती है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत चार वेद—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक एवं उपनिषद् माने जाते हैं।

ऋग्वेद जिसे वर्तमान युग में भी पवित्र माना जाता है, भारत का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम् धर्म ग्रन्थ है, जिसका रचनाकाल लगभग 1500 ई० पू० से 1000 ई० पू० के मध्य में रख सकते हैं। वैदिक धर्म का प्रारम्भिक रूप विस्तार से हमें ऋग्वेद से ही ज्ञात होता है। ऋग्वेद स्तुतिपरक मंत्रों का संग्रह है, जिसका उपयोग यज्ञों के समय अपने आराध्य देवताओं को आहूत एवं प्रसन्न करने के लिए आस्थावान आर्य करते थे। बाद में तीन वेद सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद कुछ भिन्न प्रकार के हैं। इनकी रचना ऋग्वेद के एक या दो शताब्दी पश्चात् हुई। ब्राह्मण ग्रंथ वृहद् है, जो वेदों के परिशिष्ट माने जाते हैं। इसी प्रकार आरण्यक एवं उपनिषद् भी क्रम से ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट माने जा सकते हैं। ब्राह्मण ग्रंथों का रचनाकाल सामान्य रूप से 800 ई०पू० से 600 ई०पू० के मध्य रखा जा सकता है। ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् तथा इनके पूर्व के ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य तीन वेद, उत्तर वैदिक युगीन धर्म के अध्ययन के स्रोत हैं।

वैदिक देवता :

वैदिक धर्म के अन्तर्गत अराधना के मुख्य विषय देव थे। देव शब्द की व्युत्पत्ति दीप्त्यर्थक दिव् धातु से हुई है, फलतः देव वह है जो चमकता है और अपने ससर्ग में आने वाले को भी देदीप्यमान कर देता है। इस प्रकार देव शब्द की उत्पत्ति हुई है, उज्ज्वलता एवं प्रकाश से सम्बन्धित है और इस अर्थ में देवता प्रकाशमान थे। यास्क में अनुसार – 'देवो दानाद् दयोतनाद् दीनवा द्वा अर्थात् लोकों में भ्रमण करने वाले प्रकाशित होने वाले तथा भोज्य आदि सुख चैन समस्त पदार्थों को प्रदान करने वाले को देवता कहते हैं। जब जीवन का लक्ष्य ही प्रकाश बन गया और जब जीवन का अधिकरण ही ज्योति बन गयी तब इस जीवन प्रांगण का यह लोक भी तो प्रकाश का ही आंगन बन जाता है। वैदिक ऋषियों का लोक जिसमें देवता संचरण करते हैं, अन्धकार, माया और जादूगरी का क्षेत्र न होकर प्रकाश एवं प्रताप का क्षेत्र था। उदासीनता अथवा विराग का क्षेत्र न होकर कर्म का और लोक संग्रहार्थ उद्योग का क्षेत्र था।

वैदिक देवता प्रकृति के अधिष्ठातृ चेतना शक्ति है, जिन्हे वैदिक ऋचाओं में मूर्त प्राणी के रूप में चित्रित किया गया है। उनकी सत्ता मानव रूप में स्वीकार की गयी है। समस्त देवता किसी न किसी प्रकृति की शक्ति से सम्बद्ध है। परम्परया यह विश्वास चला आ रहा है कि प्रकृति की सभी वस्तुएं तथा घटनाएं जिनसे मनुष्य घिरा है, चेतन और दिव्य हैं। देवताओं की परिकल्पना के मूल में यही विश्वास एवं आस्थापरक भावना सन्निहित है। वेदों के वास्तविक देव विशिष्ट मानव हैं, जो मानवोचित आकांक्षाओं और प्रेरणाओं से ओत प्रोत मानव की भाँति पैदा हुए किन्तु अन्तर इतना है कि ये अमर हैं। ये सभी बिना किसी अपवाद के प्रकृति की गोचर घटनाओं अथवा तत्त्वों के दैवीकृत प्रतिनिधि हैं।

देवोत्पत्ति के सम्बन्ध में वैदिक सूक्तों में अनेक पूराकथाएं हैं, संहिताओं के दार्शनिकों सूक्तों में देवों की उत्पत्ति को अधिकतर जलतत्त्व से सम्बद्ध माना गया है। अथर्ववेद की उक्ति है कि देवगण असत् से उद्भूत हुए। सृष्टि सम्बन्धी एक सूक्त का

कथन है कि देवताओं की उत्पत्ति जगत की सृष्टि के पश्चात् हुई, इसके अतिरिक्त सामान्यतया देवताओं को आकाश और पृथ्वी की सन्तान कहा गया है। अन्य एक स्थल पर प्रत्यक्षतः विश्व के तीन स्तरों के अनुरूप देवों की त्रिस्तरीय उत्पत्ति अदिति से जल से एवं पृथ्वी से विवृत हैं कुछ स्थलों पर देवों की माता एवं पिता वृहस्पति तथ सोम कहे गये हैं। सात या आठ एवं कहीं-कहीं ग्यारह देवताओं के समूह आदित्यों को आदिति का पुत्र कहा गया है। मैक्समूलर का कथन भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है –

“Aditi, an ancient god or goddess, is in reality the earliest name invented to express the Infinite; not the Infinite as the result of a long process abstract of reasoning, but the visible infinite, visible by the naked eye, the endless expanse, beyond the earth beyond the clouds, beyond the sky.

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक आर्यों का प्रकृति के शक्तियों के प्रति आकर्षण था। वे प्राकृतिक वस्तुओं एवं उनके कार्य व्यापारों के स्नेहिल भावों और आनन्दमयी दृष्टि से निरखते थे। प्राची में नवोदित प्रातः कालीन सूर्य की अभिराम किरणों तथा रात्रि में सोम की सुधायुक्त शीतल रश्मियों को देखकर प्रफुल्लित हो उठते थे। हापकिन्स का अभिमत है कि देवताओं को प्राकृतिक दृश्यों के अधिष्ठाता के रूप में स्वीकार किया गया। भौतिक जगत की उत्पत्ति के निमित्त ही उनकी कल्पना की गयी।¹ वैदिक साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ के अध्ययन से ही स्पष्ट है कि प्रारम्भ में वैदिक धर्म बहुदेववादी अर्थात् अनेक देवताओं में विश्वास का था। उस समय प्रकृति की विविधताओं को अनेकानेक देवताओं की कल्पना करके विवृत किया गया। इस प्रकार विविध देवताओं की सत्ता का आभास बहुदेववाद का परिचय देता है।

प्रत्येक वैदिक देवता को पृथक-पृथक महत्व प्रदान किया गया। उन्हें जगत में स्रष्टा एवं नियन्ता के रूप में समादृत किया गया है। इसी विश्वास को दृष्टि में रखते हुए वैदिक कवि जिस देवता का स्तवन कर रहे होते हैं उसी की प्रशस्ति में इतना विभोर हो जाते हैं कि उसमें गुणों की असंगति की सीमा तक अतिरंजित कर देते हैं। इसे मैक्समूलर ने 'हीनोथीज्म की संज्ञा दिया जो एक विवादास्पद सिद्धान्त के रूप में स्वीकृत

किया जाता है। इसके अन्तर्गत अलग-अलग देवता को बारी-बारी से सर्वश्रेष्ठ मानने की भावना विद्यमान थी। ठीक इसी के बाद जगत के स्रष्टा के रूप में प्रजापति, अथवा परम 'पुरुष की परिकल्पना ने एकेश्वरवाद को जन्म दिया² और जब उसे सर्वश्रेष्ठ रूप में स्वीकृति प्रदान की गयी तब सर्वेश्वरवाद का सिद्धान्त सामने आया।³ सभी देवताओं में एक तत्व विद्यमानता के भाव भी ऋग्वेद में ही परिलक्षित होते हैं जहाँ एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति, के साथ अद्वैतवाद का सूत्रपात माना जा सकता है, इस सिद्धान्त को मोनोथीइज्म की संज्ञा प्रदान की गयी। यास्क ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है कि समस्त देवगण एक ही आत्मा के प्रत्यंग रूप हैं, उसी आत्मा का विभिन्न प्रकार से पूजन-अर्चन होता है।⁴

वैदिक देवमण्डल का वर्गीकरण एवं स्वरूप:

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद दोनों में देवताओं की कुल संख्या तैंतीस बतायी गयी है।⁵ अनेक स्थानों पर इसे ग्याहर तीन गुना, के रूप में व्यक्त किया गया है। एक स्थल पर कहा गया है कि ग्यारह स्वर्ग में, ग्यारह पृथ्वी पर और ग्यारह जल (वायु) में निवास करते हैं।⁶ इसी प्रकार अथर्ववेद भी देवों का स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी पर निवास करने वालों के रूप में निर्देश देता है। तैंतीस की संख्या देवों की पर्याप्त संख्या नहीं स्वीकार की जा सकती क्योंकि वाजसनेयी संहिता⁷ के एक मंत्र में देवों की संख्या 3339 बतायी गयी है। ब्राह्मण ग्रंथों में भी देवताओं के तीन वर्ग उल्लिखित हैं, जिसे 8 वसुगण 11 रुद्रगण तथा 12 आदित्यगण रूप में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु इनकी संख्या तैंतीस बनाने के निमित्त शतपथ ब्राह्मण में द्यौस और पृथ्वी अथवा इन्द्र और प्रजापति को सम्मिलित किया गया है जबकि ऐतरेय ब्राह्मण में वायष्कार और प्रजापति को सम्मिलित किये गये हैं।

इस प्रकार वैदिक देवमण्डल के समस्त देवताओं का तीन वर्ग दर्शित है। त्रिपदीय वर्गीकरण का अनुसरण करते हुए यास्क विभिन्न देवों अथवा एक ही देव के विभिन्न रूपों को तीन लोको के अन्तर्गत रखते हैं –

1. पृथ्वीस्थानीय अथवा पार्थिव—इसके प्रमुख देवता अग्नि, वृहस्पति एवं सोम हैं।
2. अन्तरिक्ष स्थानीय अथवा मध्यमस्थान — जिनमें इन्द्र, वायु, अपानपात् मरुत, पर्जन्य और रुद्र मुख्य हैं।
3. द्युस्थानीय अथवा दिव्य— इस कोटि के देवताओं में सूर्य, सविता, विष्णु, वरुण, धौस, पूषन, मित्र, अश्विन और उषा प्रधान हैं।

यास्क का तो कथन है कि वेदों की व्यख्या करने वाले उनके पूर्व के निरुक्तकारों के मतानुसार वास्तव में केवल तीन ही देवों का अस्तित्व है जो इस प्रकार है — पृथ्वी पर अग्नि का अन्तरिक्ष में वायु अथवा इन्द्र का और स्वर्गलोक में सूर्य का निवास है। वास्तव में वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के माध्यम से उस जगन्नियन्ता की लीलाओं के कारण रूप से उसके शक्ति प्रकाशन के तीन केन्द्रों अर्थात् पृथ्वी, वायु और आकाश की कल्पना की। आगे यास्क महोदय ने यह विचार भी व्यक्त किया है कि तीन केन्द्रों वाला नियम शायद वैदिक देवों की स्थिति स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यह सभी भावना उन्होंने व्यक्त की है, ये सब देवता स्पष्टतया एक या दूसरे से अलग हो क्योंकि जो प्रार्थनाएं की गयी हैं वे उनका अलग-अलग प्रकार का विवरण प्रदान करती हैं और उनके नाम भी अलग-अलग यह बात अधिक समीचीन प्रतीत होती है कि प्रकृति ने जिन-जिन रूपों में अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया है, उन रूपों का पृथक-पृथक नाम रख दिया गया और यद्यपि उन ऋषियों ने स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि ये नाम केवल नाम मात्र हैं और जिसके ये नाम हैं वह एक है और केवल एक है, परन्तु इन नामों की पूजा करने वाले सामान्य जनो का विश्वास और ज्ञान इतना विस्तृत न था कि इस बहुत्व में एकत्व की बात सोच सकें। अतएव बहुदेववाद का ही सहारा ग्रहण करते थे। फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से सामान्यजन के विश्वासों के आधार पर वैदिक, देवताओं का त्रिविभाजन ही विशेष रूप से स्वीकार किया गया है।

वैदिक देवताओं का स्वरूप —

वैदिक धर्म प्रारम्भ में बहुदेववादी था, अर्थात् अनेक देवों में विश्वास का था। ये देवता अधिकतर प्रकृति की अलौकिक एवं नियामक शक्तियाँ के मानवीकृत रूप थे, जिनमें व्यक्तित्व का आरोप किया गया था, जैसे सूर्य, वायु, द्यौस (आकाश), पृथ्वी, अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि। यद्यपि कि धर्म का मूल रूप रहस्याच्छादित है। फिर भी उसका प्राचीनतम रूप प्राकृतिक शक्तियों की उपासना का ज्ञात होता है। मानव जब विशुद्ध पाशविक चेतन की स्थिति से सर्वप्रथम वहिर्गत होता है, तब वह देखता है कि वह प्रकृति के जिन विशाल शक्तियों से घिरा हुआ है, उनके लगभग पूरी तरह अधीन है। यही कारण है कि वह इन शक्तियों के पीछे अदृश्य रूप से कार्यरत चेतन सत्ता की कल्पना कर लिया। इस तरह प्राकृतिक शक्तियाँ ही व्यक्तित्व द्वारा आरोपित होकर देवता के रूप में आईं।

आर्यों के भारोपीय एकता के युग ही में संभवतः मानवाकार द्युः स्थानी देवताओं की जैसे कि द्यौ मित्र एवं अश्विन की भावना उभर आई थी। फलतः यह स्वाभाविक है, ऋग्वेद के देवता भी मानव हो, ऐसे मानव जिनकी शक्ति अति भौतिक हो, जो मरते न हो, किन्तु फिर भी जो जन्मते हों और मनुष्य की तरह पारिवारिक सम्बन्धों में डूबे हुए हों। तथापि वैदिक देवता मण्डल एक देवता ग्रीक देवता की तरह स्पष्ट व्यक्तित्व के सम्पन्न नहीं दृष्टिगत होता है। वैदिक देवताओं की कल्पना भी मानवीय धरातल पर की गयी थी। इनकी उपासना और परितुष्टि प्रार्थनाओं एवं यज्ञों द्वारा की जाती थी। लेकिन यूनानी देवताओं की तरह वैदिक देवताओं में मानवीकरण की पूर्णता नहीं उपलब्ध होती, उनका एक दूसरे से भेद अत्यन्त अस्पष्ट है। इसका मुख्य कारण यह है कि एक प्रकार के गुणों एवं शक्तियों का आरोप बहुत से देवताओं के समान रूप से किया गया मिलता है।

वैदिक देवताओं का भी मानवीकरण हुआ किन्तु ग्रीक देवताओं के प्रतिकूल उनके मानवाकृति के पीछे प्राकृतिक दृश्य झिलमिलाते दृष्टिगत होते हैं। वैदिक देवता में मानवाकृति की मात्रा काफी भिन्न है। कुछ देव ऐसे हैं, जिनमें क्रियाशील तत्व सतत विद्यमान रहता है। 'आप' हैं किन्तु साथ ही पीने में वे स्वास्थ्यकर हैं, उषा देवी एक सुन्दरी की भाँति अपना वपुष् अनावृत करती हैं, यहाँ तद्रूप्य की अपेक्षा तुलना अधिक है।

अग्नि भी कभी अग्नि तत्व से पृथक होकर हमारे समक्ष नहीं आते। जल और मेघ में उनका तिरोधान अग्नि रूप में ही दृष्टिगत होता है। दूत के रूप में वे देवों और मनुष्यों की यज्ञस्थली पर एकत्र करने के निमित्त आकाश की दिशा में लपटे उठाते हुये यज्ञ के अग्नि है। इन्द्र मात्र एक ऐसे देवता हैं, जो आधारभूत प्राकृतिक दृश्य से बहुत कुछ सीमा तक निर्मुक्त हो गये हैं, उन्हें दिव्य मानव माना जा सकता है, दूसरे शब्दों में उन्हें एक प्रकार से सांस्कृतिक महापुरुष कहा जा सकता है। सूर्य, उषा, जल और अग्नि सतत दृश्यमान पदार्थ हैं और इनके नामोल्लेख मात्र से ही इसका असली भौतिक स्वरूप उजागर हो उठता है, जबकि इन्द्र का अभिधेयार्थ वैदिक कवियों के लिए उतना ही धुंधला बन चुका था, जितना कि वह आज हमारे लिए हैं।⁸ आप ऐसी देवियों हैं जो अपने आप को प्राकृतिक जल से पृथक नहीं कर सकी। उन्हें हम ऋग्वेद में विशुद्ध जल की तरह व्यवहृत पाते हैं और उन्हें सोम में मिल जाने के लिए निमंत्रण भी दिया गया है, किन्तु उनका अपना निजी रूप जल युवतियों का है जो मन में आते ही अपने तत्व (जल) को त्याग देती और मर्त्यों में विहार करने लगती है। जहाँ तक सोम देवता का सम्बन्ध है, ऋग्वैदिक एवं उत्तर काल में कभी पूरी तरह मानवीकृत नहीं हो सका है, जब कि वहीं अवेस्ता में वह पुरोहित के समक्ष एक अत्यन्त सुन्दर पुरुष के रूप प्रकट होता है।

उपर्युक्त दृष्टांतों के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि देवों सम्बन्धी वैदिक धारणा में रूपरेखा की अनिश्चतता तथा वैयक्तिकता का अभाव प्रायः सर्वत्र दर्शित होता है। इसका मुख्य कारण यही ज्ञात होता है कि वैदिक देवगण किसी भी अन्य भारोपीय जाति के देवताओं की अपेक्षा उन भौतिक घटनाओं के अधिक सन्निकट है, जिनका ये प्रतिनिधित्व करते हैं। यही कारण है कि वैदिक देवों का जो रूप दृष्टिगत होता है, उसमें मानवत्वरोपण लेश मात्र भी नहीं है, जैसा कि सूर्य, पृथ्वी तथा अन्य उदाहरणोंसे स्पष्ट है।

चूंकि आर्य प्रकृति के प्रति अत्यंत आकृष्ट थे, इसलिए प्राकृतिक शक्तियों एवं वस्तुओं को अति स्नेह एवं आनन्द पूर्वक निरखते थे। प्राचीन दिशा में उदीयमान प्रातः कालीन सूर्य की अभिराम किरणों तथा रात्रि में सोम की सुधायुक्त शीतल रश्मियों को देखकर आनन्दातिरेक की स्थिति में पहुंच जाते थे। उन्होंने प्रकृति की इन विविधताओं

को अनेकानेक देवताओं की कल्पना करके विवृत्त किया तथा उनके प्रसाद से विश्व के क्रियाकलाय के संचालन की बात स्वीकार की। उन देवताओं को संबंधित प्राकृतिक शक्तियों एवं दृश्यों का अधिष्ठाता एवं अन्तर्निहित चेतन शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया तथा भौतिक जगत की उत्पत्ति के लिए उन्हें ही उत्तरदायी माना गया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक देवता प्राकृतिक व्यापारों के ही मानवीकृत रूप थे।

वैदिक आर्य इन देवों के प्रति भय, आश्चर्य और पूजा का मिला जुला भाव अपना लेता है, उनकी स्तुति में गीत गाता है और उन्हें प्रसन्न करने या अनुग्रह प्राप्त करने हेतु उनकी उपासना करता है या उन्हें बलि प्रदान करता है। लेकिन ये देवता सीमित अर्थ में ही देवता हैं, क्योंकि देवता कहलाने के बावजूद इन्हे मनुष्य की आकृति में कल्पित किया गया और उन्हीं अभिप्रेरकों और मनोवेगों से संचालित होता है। ये वास्तव में महिमा—मण्डित, मनुष्य हैं और इसलिए न पूर्णतः लौकिक हैं और न पूर्णतः अलौकिक।⁹

ब्लूम फील्ड ने तो यह विचार व्यक्त किया है कि भारत में प्रकृति के जो विशेष आकर्षण हैं, उनके कारण आर्यों के अन्दर प्रकृति के प्रति यह अविस्मरणशील आसक्ति आई हो।¹⁰ चिन्तन में उसकी रुचि इतनी अधिक गहरी थी और तत्व को अपने अन्तस्तल में छिपाये रखने वाले रहस्य के प्रति उसकी संवेदनशीलता इतनी तीव्र थी कि किसी संतोषजनक समाधान में जब तक वह नहीं पहुंचा तब तक उसने उन प्राकृतिक घटनाओं को, जिन्हें वह समझना चाहता था, अपने समक्ष खुले रूप में रखा। यही कारण है कि वैदिक आर्य प्रकृति के अधिष्ठातृ चेतन शक्ति एवं उसके कार्य व्यापारों को मानवीकृत रूप प्रदान करने के बाद भी उसके मूल तत्व को विस्मृत न कर सकें और ग्रीक आदि देशों के देवों के पूर्ण मानवीकरण से अपने वैदिक देवों को पृथक रखें।

जहाँ अनेक देवता किसी एक ही घटना के विभिन्न पक्षों द्वारा उत्पन्न बताये गये हैं, वहाँ स्पष्टता का और अधिक अभाव परिलक्षित होता है। इन्हीं कारणों से देदीप्यमानता, शक्ति, उपकारशीलता और वैदग्धता आदि जैसे गुण सभी देवों में समानरूप से दृष्टिगत होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देव का अपना अलग—अलग चरित्र केवल

कुछ ही अनिवार्य चारित्रिक लक्षणों द्वारा निर्मित हुआ है। इन्हीं सर्वजनीन गुणों के आधार पर अग्निदेव को सम्बोधित करते हुए एक वैदिक कवि कहता है – 'हे अग्निदेव तुम प्रकट होते समय वरुण के समान और समृद्ध होकर मित्र के समान होते हैं, हे अग्निदेव तुम सब देवता में केन्द्रित हो और तुम हविदाता यजमान के लिए इन्द्र के समान पूजनीय हो।'¹¹

ऋग्वेद में ही यह भी विचार व्यक्त मिलता है कि अलग-अलग देवता एक ही दिव्यात्मा के विभिन्न स्वरूप हैं, कि अलग-अलग देवता अनेक रूपों में वर्णन करते हैं, वे उसे अग्नि यम और मातरिश्वन् कहते हैं।¹²

वास्तव में देवताओं का जो भौतिक स्वरूप मानवत्व पर अरोपित है, वह केवल उनके क्रियाकलापों का वर्णन करने के निमित्त ही प्राकृतिक आधार का लक्षणात्मक प्रतिनिधित्व करता है।¹³ यही कारण है कि सिर आकृति, मुख,, कपोल, नेत्र, केश, कन्धे, वक्षस्थल, पेट भुजाएं आदि का मुख्य रूप से इन्द्र और मरुतों के युद्ध उपकरण के संदर्भ में वर्णन है। सूर्य की किरणों को ही उनकी भुजाओं के रूप में विवृत्त किया गया है और उनके भौतिक पक्ष के प्रतिनिधित्व के लिए नेत्रों की कल्पना की गयी है। अग्नि की ज्वालाएं ही उनकी जिह्वा और हाथ पैर हैं। दो या तीन देवताओं के सम्बन्ध में उनके स्वरूप को विश्वरूप कहा गया है। प्रो० मैकडानेल का तो कथन है कि देवताओं के स्वरूप की कल्पना वैदिक धर्म के अस्पष्ट होने के कारण ही ऋग्वेद में उनकी मूर्तियों अथवा मन्दिरों का प्राविधान नहीं मिलता।¹⁴

कुछ देव वेशभूषा युक्त वर्णित हैं। उषा को उज्जलवसना और कुछ को कवच तथा शिरस्त्राण से युक्त कहा गया है। इन्द्र नियमित रूप से एक वज्र रखते हैं। अन्य देवों को भी तोमर, युद्ध कुठार तथा धनुषवाण आदि शस्त्रों से सज्जित कहा गया है। सामान्यतः सभी देव रथों पर आरूढ़ रहते हैं जो अश्व चलित होते हैं। कुछ देव ऐसे हैं जिनके रथ दूसरे पशु द्वारा खींचे जाते हैं। जैसे पूषन् का बकरों द्वारा, उषस का गाय तथा मरुतों का चितकबरों मृगों द्वारा। यज्ञादि के अवसर पर घास का आसन इन्हें बैठने के लिए

दिया जाता था। इनका प्रमुख पेय सोमरस है। इन्हे दूध, मक्खन, जौ और चावल भोज्य पदार्थ के रूप में प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त बकरियों, भेड़ आदि भी अर्पित किये जाते थे। जैसे इन्द्र के बारे में कहा गया है कि वे असंख्य भैसों को खा जाते थे।

देवताओं का आवास तृतीय स्वर्गलोक अथवा विष्णु के उच्चतम पग का स्थल बताया गया है। उस लोक में देवगण सोमपान करके उल्लसित और आनन्द का जीवन व्यतीत करते हैं। जिस प्रकार मानव परस्पर एक साथ प्रेम एवं आनन्द के साथ रहते हैं और कभी-कभी युद्ध प्रवृत्त हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार देवता भी युद्ध प्रवृत्त हो जाते थे। इन्द्र विशेष रूप से जो युद्ध के देवता थे, स्वभावतः महत्वाकांक्षी दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि इनका एक सा स्वरूप नहीं रहा। समयानुकूल परिवर्तित होता दीखता है। इन्द्र बल के देवता थे और आर्य प्रसार के युग में संग्रामों का बाहुल्य उनकी लोकप्रियता का कारण था। उत्तरकाल में इन्द्र वर्षा के देवता के रूप में अर्चित हुए और इस प्रकार लोकप्रिय बने रहे। ऋग्वेद¹⁵ में एक स्थल पर इन्द्र को समस्त देवों में युद्धरत बताया गया है।¹⁶ युद्ध में इन्द्र ने अपने पिता का बध कर दिया था तथा उषा का रथ भग्न कर दिया था।

अग्नि, सूर्य आदि देवता यद्यपि झंझावत एवं प्रचण्ड स्वरूप वाले हैं, फिर भी प्रकृत्या उपकारी एवं समृद्धिदायक प्रतीत होते हैं। मात्र रुद्र ही एक ऐसे देवता हैं जिसमें कुछ विध्वंसकारी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं। वे महामारी एवं प्रचण्ड वात या तूफान के देवता दृष्टिगत होते हैं। उनसे धन-जन पशु तथा आवास से दूर रहने के लिए ही स्तुति की गयी है।

नैतिकता के धरातल पर देवताओं का चरित्र समृद्ध है। सामान्यतः सभी देव सत्यवादी एवं निष्कपट आचरण वाले दृष्टिगत होते हैं नैतिकता एवं आचार के देवता के रूप में वरुण की विशेष प्रतिष्ठा थी। वे भूत के संरक्षक एवं नैतिक निमयों के प्रतिपालक कहे गये हैं। वरुण से सम्बद्ध सूक्तों में ऋक्संहिता के नैतिक आदर्श प्रकाश पाते हैं। वैसे वैदिक देवों में नैतिकता की अपेक्षा शक्ति का विशेष बाहुल्य दीखता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक देव तेज, प्रकाश तथा शक्ति तत्व के प्रतीक माने गये। अपार शक्ति युक्त, उदार, सर्वज्ञ, दयालु, निश्छल और अमरत्व आदि अनेक गुण हैं। वे पापियों—अपराधियों को दण्ड तथा सदाचारी एवं पुण्यात्माओं को वैभव प्रदान करते हैं। वैदिक देव ऋत् एवं सत्य के नियामक हैं। जहाँ तक मानवीकरण का प्रश्न है, यूनानी देवताओं की तरह मानवीकरण की पूर्णता नहीं मिलती। उनका एक दूसरे से भेद स्पष्ट नहीं क्योंकि एक ही प्रकार के गुणों और शक्तियों का आरोप बहुत से देवताओं में मिलता है।

वैदिक देव—भावना का विकास :

बहुदेववाद: वैदिक धर्म एक देववादी है या बहुदेववादी इस संदर्भ में यहाँ मैक्समूलर¹⁷ का विचार उल्लेखनीय है — 'एक देववाद का जो अर्थ लगाया जाता है, उस अर्थ में तो वैदिक धर्म एक देववादी नहीं है, यद्यपि अनेक ऋचाएं ऐसी हैं, जिनमें एक देववाद की बात जितना बल देकर कहीं गयी हैं, उतना बल देकर तो ओल्ड टेस्टामेण्ट में भी नहीं कहीं गयी है। न्यूटेस्टामेण्ट एवं कुरान की भी यही स्थिति है। एक वैदिक ऋषि का कथन है कि 'वह एक है, सन्त जन उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं जैसे अग्नि, यम, मातरिश्वन।' फिर प्रथम दृष्टि में वैदिक धर्म बहुदेववादी ही दृष्टिगत होता है। वेदों का बहुदेववाद यूनान एवं रोम के बहुदेववाद से पृथक अर्थ रखता है। पाश्चात्य बहुदेववादी धारणा के अन्तर्गत देवताओं का एक संगठित रूप होता है, जिनमें प्रत्येक की शक्तिमात्ता दूसरे से भिन्न होती है और ये सबके सब उस परमेश्वर के सहायक हैं, जिसे वे जीयस या ज्युपिटर कहते हैं। वेदों का बहुदेववाद इससे भिन्न है।

वैदिक साहित्य में प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि वैदिक धर्म का प्रारम्भिक रूप बहुदेववाद अर्थात् अनेक देवों या देवताओं में विश्वास था। ये देवता प्रकृति के अलौकिक एवं नियामक शक्तियों के विविध मानवीकृत रूप थे। इन विविध देवताओं की सत्ता का आभास ऋग्वेद में मिलता है, जो तत्कालीन बहुदेववाद (च्वसलजीमपेउ) का परिचायक है।¹⁸ सृष्टि और उसके मूल में स्थित सार्वभौम सत्ता के सम्बन्ध में विचार की

गई श्रेणियों ऋग्वेद में उपलब्ध होती हैं। इसकी प्रथम श्रेणी ही बहुदेववाद की है, जिसमें विश्व के आरधारभूत एक ही सत्ता को बहुत से देवताओं के रूप में देखा गया। इस प्रकार वैदिक देवतामण्डल में 3000 से अधिक देवता की कल्पना की गयी।

एकेश्वरवाद (Monotheism) प्राचीन वैदिक धर्म का एक विशिष्ट लक्षण उनका नाना देवताओं में विश्वास का था। शनैः शनैः इस धारणा का आकर्षण जाता रहा और पुरानी विचार सरणियों से ऊबकर व्यक्ति सरल व्यख्या की चाह से उत्प्रेरित हुआ। अब वैदिक युगीन मानव ने प्राकृतिक घटनाओं के कारणों के स्थान पर उनके आदि कारण की तलाश प्रारम्भ की। डा० एम० हिरियन्ना का इस सन्दर्भ में कथन है कि 'अब वह अनुभूत तथ्यों और घटनाओं का कारण नाना देवों को मानने से संतुष्ट न रह सका ओर उस एक ईश्वर को पाने के लिए प्रयत्नशील हो गया जो उन सबके ऊपर शासन करता है और उन्हें नियंत्रण में रखता है।¹⁹ इस समय जो एक देव की धारणा अभिव्यक्त हुई, उसे इसके पूर्व की बहुदेववादी विचाराधारा में अव्यक्त रूप से देखा जा सकता है। जगत के स्रष्टा के रूप में 'प्रजापति' अथवा परम 'पुरुष' की कल्पना 'एकेश्वरवाद' का प्रतीक है, जिसे पाश्चत्य विद्वानों ने 'मानोथीइज्म' की संज्ञा प्रदान की।²⁰ इस प्रकार स्पष्ट है कि बहुदेववाद के शीघ्र बाद ही मानव बुद्धि ने विश्व में एक व्यवस्था और बहुत्व में एकत्व देखना प्रारम्भ किया। इसमें ऋत् नामक सार्वभौम भौतिक और नैतिक क्रम और व्यवस्था की कल्पना ने सहायता की। अनेकानेक विविध देवताओं की वर्गों और युग्मों में देखा जाने लगा और विश्वेदेवाः (समस्त देवता) की धारणा बनने लगी।²¹ फिर बहुदेववाद से आगे एकेश्वरवाद का मार्ग प्रशस्त हो गया।

बहुदेववाद के नाना देवताओं की संख्या कम करने का यह सबसे सरल ढंग था कि सर्वाधिक प्रभावशाली देवता को सर्वोच्च पद पर बिठा दिया जाय। किंतु वैदिक आर्यों ने इस ढंग को नहीं ग्रहण किया। वैसे एक समय वरुण को तो दूसरे समय इन्द्र इस दृष्टि से एकेश्वरवादी आस्था की शर्तों के सन्निकट पहुंच गये थे किन्तु कोई भी एक पुरुष में कल्पित सर्वोच्च ईश्वर के पद को नहीं प्राप्त कर सके थे। इस प्रकार वैदिक युग में सामान्य अर्थ में एकेश्वरवाद अविकसित ही रह गया। उसी समय एक परमेश्वर की

खोज का दूसरा ढंग भी आविष्कृत हो गया, जिसके द्वारा और देवताओं में ही एक सर्वोच्च देवता ढूँढने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। इसे डा० एम० हिरियन्ना के शब्दों में 'दार्शनिक एकेश्वरवाद' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इसका आधार ऋग्वैदिक ऋचाओं में ही दृष्टिगत होते हैं। वैदिक कवि दो मित्र और वरुण और कभी-कभी इससे भी अधिक देवताओं के नाम एक साथ संयुक्त कर उन्हें एक जैसे मानकर स्तुति करते दृष्टिगत होते हैं। इस प्रकार की अभिव्यक्तियाँ ऋग्वेद के ही बाद में मंत्रों में दृष्टव्य हैं जहाँ कहा गया है कि 'जो केवल एक है उसे विपूजन अग्नि यम और मातरिश्वन् आदि विविध नामों से पुकारते हैं।' ²² एक अन्य स्थल पर भी इसी आशय को दृष्टि में रखते हुए कहा गया है – 'महत् देवानां असुरत्वं एक।' ²³

हेनोथीइज्म (Henotheism) एकाधिदेववाद – एकेश्वरवाद भी अस्थिर रहा और निरन्तर अपनी आधार भूमि को परिवर्तित करता रहा। एक देवता बहुत कुछ दूसरे देवता के समान देखे गये। यदि वैदिक सूक्तों में देवता का नाम न अंकित होता तो यह ज्ञात करना कठिन हो जाता है कि किस देवता की स्तुति में उक्त सूक्त के मंत्र हैं। यहाँ इस सन्दर्भ में वैदिक ऋषियों की प्रसिद्ध आदत उल्लेखनीय है वह यह कि वे जिस विशेष देवता की स्तुति करते होते थे, उसके महत्व को काफी अतिरंजित कर देते थे और अन्य देवताओं की उपेक्षा करते हुए उसे सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करते थे। वैदिक धर्म की इस अवस्था को मैक्समूलर ने एकेश्वरवाद (मोनोथीइज्म) से पृथक करने के लिये हेनोथीइज्म अर्थात् एकाधिदेववाद कहा है। इसे एकत्व की दिशा में प्रस्थान करने की सहज प्रवृत्ति की अचेतन अभिव्यक्ति मानते हुये मैक्समूलर ने बहुदेववाद और एकेश्वरवाद के मध्य विकास की निश्चित अवस्था बताया है। ²⁴ इस धारणा के अन्तर्गत ऐसा हुआ कि जिस समय जिस देव पर जिस ऋषि की श्रद्धा हुई उसी की स्तुति में ऋषि ने उसे अनादि, अनन्त, निर्गुण आदि कहा। मैक्समूलर का स्वयं का कथन है कि 'भारत का एक देववाद या एकेश्वरवाद इस प्रकार समझा जा सकता है कि प्रत्येक हिन्दू मानता तो अनेक देवों का है, परन्तु प्रत्येक वर्ग सम्प्रदाय का एक न एक देवता ऐसा अवश्य होता है जिसमें सर्वशक्तिशाली परमात्मा के सभी गुण आरोपित होते हैं। अर्थात् हम भारत के

एकेश्वरवाद को हेनोथीइज्म अर्थात् बिना अन्य देवों में अविश्वास किये ही एक देवता को परमपिता परमेश्वर मानने का नाम दे सकते हैं। मेरा विचार है कि यह शब्द भारतीय एकेश्वर वाद की पूर्ण अभिव्यंजना करता है।²⁵

छोटे देवताओं को उन अत्युक्तिपरक शब्दों में, जो उन्हें महत्तम देव बना देते हैं, आहूत करने में कवि का क्या दृष्टिकोण था। दूसरा प्रश्न इस सन्दर्भ में यह उठता है कि क्या यह मानना युक्ति संगत होगा कि स्तुति के समय वैदिक कवि अन्य देवों को अपने मन से बाहर कर देता था और अपनी स्तुति के विषयभूत देवता को सर्वोच्च देव समझकर उसकी प्रशंसा में तल्लीन हो जाता था और इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का अनुभव करता था कि उसका द्रवित हृदय वह, वह कर उसके इष्टदेव के पास जा पहुंचा है। इसी सिद्धान्त को हेनोथीइज्म या कैथेनोथीइज्म (Kathenotheism) कहा गया है। इसके प्रवर्तक मैक्समूलर महोदय के सिद्धांतों का खण्डन कीथ महोदय ने किया है। उनका कथन है कि आज यह अपने इस रूप में आलोचनाओं से क्षत-विक्षत होकर मृत प्रायः हो गया है। यह विचार विश्वसनीय नहीं लगता है कि वैदिक कवि एक क्षण के लिए भी देव मण्डली के अन्य देवों को अपने मन से बाहर निकाल देता था। विश्व देवाः सूक्तों का प्रयोग यज्ञ में प्रायः होता ही रहा है और इनमें विविध देवों को एक दूसरे के निकट संबंध में विठाया गया है, किन्तु ऋग्वेद के बहुसंख्यक सूक्तों की रचना सोमयाग में प्रयोग के उद्देश्य से की गयी थी, सोमयाग में देवताओं को अपनी-अपनी निश्चित गद्दी प्राप्त थी, अतः वैदिक कवि ठीक-ठीक जानता था कि याग के किस प्रसंग के लिए उसका अपना सूक्त विशेष बनाया गया है।

वैदिक कवियों को प्रायः हम उपासना के समय अपने उपास्य देव को सर्वोच्च मानने की सामान्य प्रकृति से युक्त पाते हैं। विचार की इस अवस्था का बोधक बनकर मोनोथीइज्म शब्द जीवित रह सकता है।

सर्वेश्वरवाद – ऋग्वेद में जो देवताओं के मध्य एकीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है, उसे ही हम सर्वेश्वरवादोन्मुख एकेश्वरवाद कह सकते हैं। किन्तु किसी एक देवता को

स्थायी रूप से सर्वोपरि नहीं स्वीकार किया गया। प्रारम्भ में इन्द्र की प्रधानता थी फिर विष्णु प्रमुख देवता हो गये। कभी सब देवताओं को समेटकर विश्वेदेवाः की कल्पना की गयी और उसे सर्वोपरि स्वीकार किया गया।²⁶ ब्राह्मण ग्रंथों के रचना काल में समस्त देवताओं के अधिपति और विश्व के स्रष्टा प्रजापति नामक देवता को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया गया। इसी बीच व्यक्तित्व मय सर्वोपरि देवता की कल्पना से ऊपर उठकर विश्व में मूल तत्व की अनुभूति की गयी। इस मूल तत्व की धारणा दो रूपों में विकसित प्राप्त होता हैं सर्वेश्वरवाद और एकत्ववाद। वास्तव में देवता विशेष को सर्वश्रेष्ठ रूप में स्वीकार करने की प्रवृत्ति को ही सर्वेश्वरवाद कहा गया। जैसा कि ऋग्वेद में पुरुष सूक्त²⁷ के इस मंत्र से स्पष्ट है –

‘पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।’ ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सर्वेश्वरवाद की भावना का परिपाक विशेष रूप से देखा जा सकता है, जहाँ एक ही मूल तत्व (तदेकम्) की कल्पना सृष्टि के आदि में व्यक्त है। उसी तदेकम् से सृष्टि का प्रारम्भ और उसी में परिसमाप्ति मानी गयी है।

इस संदर्भ में प्रजापति का दृष्टांत पर्याप्त होगा, जिसे देवताओं का पिता और उन सबमें सबसे महत्वपूर्ण माना गया। प्रजापति प्रकृति की सर्जनात्मक शक्ति का पुरुषीकृत रूप है। इस देवता का आविर्भाव भी विश्वकर्मा के आविर्भाव जैसा है। प्रजापति का शाब्दिक अर्थ ‘जीवो’ का स्वामी है और प्रारम्भ में इसका प्रयोग सविता आदि देवताओं के विशेषण के रूप में हुआ किन्तु बाद में यह एक पृथक सर्वश्रेष्ठ देवता का रूप ग्रहण कर लिया जो जगत की सृष्टि करता और उस पर शासन करता हैं परवर्ती वैदिक ग्रंथों में देवता को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है। सर्वेश्वरवादी वास्तव में प्रकृति का ईश्वर से अभेद स्थापित करता है। इसकी सर्वाधिक उल्लेखनीय अभिव्यक्ति ऋग्वेद के उस स्थल में दृष्टिगत होता है जहाँ अदिति का सब देवताओं और सब मनुष्यों से वस्तुतः ‘जो कुछ हो चुका है और जो कुछ होने वाला है’ उस सबसे अभेद स्थापित किया गया है।²⁸ सर्वेश्वरवाद में एक तरह से ईश्वर को प्रकृति से अतीत नहीं बल्कि प्रकृति में व्याप्त माना गया है। इस सम्बन्ध में डॉ० एम० हिरियन्ना का कथन है कि इस कारण सर्वेश्वरवाद के

उदाहरण के रूप में पुरुष सूक्त (ऋक 10/90) को उद्धृत करना उचित नहीं है। हालाँकि ऐसा करना एक आम बात हो गयी है।²⁹

एकत्ववाद (उबदवपेउ) एकत्ववाद एकवाद विचाराधारा का दूसरा रूप है। वैसे 'एक सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' के साथ ही एकत्ववाद (मोनोथीइज्म) का शुभारम्भ हो जाता है। यास्क प्रभृति विद्वानों का अभिमत है कि सृष्टि के मूल में एक ही महत्वपूर्ण शक्ति है जो विशिष्ट ऐश्वर्यवान होने के कारण 'ईश्वर' या परमात्मा कही जाती है। सभी देवता एक ही आत्मा के प्रत्यंग रूप है और उसी आत्मा का विभिन्न प्रकार से पूजन होता है।³⁰ एकत्व की धारणा ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में अभिव्यक्त हुई है, जिसे प्रशंसा सूचक शब्दों में 'भारतीय विचार धारा का पुष्प' कहा गया है।³¹ डॉ० हिरियन्ना के शब्दों में – इस सूक्त में जिसे कि विश्व-साहित्य की वस्तु कहा जा सकता है हमें एकवादी विचार धारा का सार दिखाई देता है। इसमें सर्वेश्वरवादी के विपरीत कवि दार्शनिक कारणता के सिद्धान्त को स्पष्टतः स्वीकार करता है तथा न केवल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक मूल कारण से मानता है बल्कि उसके स्वरूप को निर्धारित करने की भी चेष्टा करता है। यहाँ सत्-असत् जीवन-मृत्यु, पुण्य-पाप इत्यादि सारे द्वन्द्वों का इस आधारभूत तत्व में परिहार माना गया है। सर्वेश्वरवाद में ईश्वरवाद की जो छाया है, उस तक इसमें अभाव है।³²

एकत्ववाद का चरम विकास उत्तर वैदिक काल में ब्रह्म की धारणा में हुआ जो अद्वैत दर्शन का मूल स्वीकार किया जा सकता है।

ऋत्— वैदिक धर्म के अन्तर्गत ऋत् की धारणा का अभिप्राय विश्व में प्रतिष्ठा, नियमन, व्यवस्था और रचना के आधार-तत्व से है। इस धारणा को वैदिक मंत्रों में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त है।³³ देवताओं के वर्णन में 'गोपा ऋतस्य' अर्थात् ऋत् के संरक्षक और 'ऋतायु' अर्थात् ऋत् का अभ्यास करने वाले का प्रयोग अनेकशः हुआ है। यदि सच कहा जाय तो भौतिक जगत में एक नियमित विधान ऋत् का शासन है। 'ऋत्' शब्द प्राग्भारतीय मूल का है। यह शब्द इण्डो-ईरानी ज्ञात होता है, क्योंकि अवेस्ता में अत् पद मिलता है, जिसका प्रयोग वहाँ उन्हीं विविध अर्थों में हुआ है, जिनमें कि वैदिक भारत

में – विश्व का भौतिक विधान, यज्ञ का विधान, संसार का नैतिक विधान। तेल अर्यमना के लेख में उल्लिखित 'अत' शब्द 'ऋत' का समानान्तर स्वीकार किया जा सकता है।

ऋत् शब्द की व्युत्पत्ति अर् 'योग्य होना' अथा एर् गतिशील होना से संभव माना जा सकता है। जब वैदिक मनीषियों ने प्रकृति की धुरी को देखा तब उन्होंने उसे ऋत् पर टिकी हुई पाया— उस ऋ—त पर, जिसका सार ही 'व्यवस्थित गति' है, जिसका स्वरूप 'शाश्वत सर्ग—नियम' है। वास्तव में यह प्रकृति जो 'ऋत' की धुरी पर चलती और इस सर्ग पट को बुन रही है। ऋत् की प्रशंसा में वैदिक ऋषियों ने अनेकानेक मंत्रों की रचना की है। ऋत का दूसरा अर्थ यज्ञ से अभिप्रेत है। ऋत के अन्तर्गत ऋ का अभिप्राय गति, स्पन्दन और जीवन के सारभूत फंकसन से भी अभिप्रेत है। इस तरह स्वाभाविक क्रिया और स्वाभाविक गति दोनों ऋत् शब्द में समाहित हैं। वास्तव में करते रहो, और आगे बढ़ते चलो, यही ऋत् का अर्थ है।

ऋत् के नियम के अनुसार प्रकृति की सारी शक्तियाँ अपना—अपना कार्य व्यापार सम्पादित करती हैं। ऋत् के पद चिन्हों पर उषाएँ प्रातः काल के समय उदित होती हैं, ऋत् के अनुसार पितरों ने सूर्य को स्वर्ग में स्तम्भित किया है, सूर्य ऋत् का भ्राजमान प्रतीक है। वर्ष ऋत् का ही द्वादश अरों वाला चक्र है। जल के स्रोत ऋत् के अनुसार ही प्रवहमान होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋत् का अर्थ था प्रकृति की एकरूपता अथवा घटनाओं का व्यवस्थित क्रम, जो कि दिन—रात इत्यादि के नियमित रूप से होने में व्यक्त होता है। किन्तु मंत्रों में इस शब्द का प्रयोग इस अर्थ के अतिरिक्त 'नैतिक—व्यवस्था' के अर्थ में भी हुआ है। इस प्रकार ऋत् की व्यवस्था के अनुसार वैदिक—देवताओं को न केवल विश्व व्यवस्था को बनाये रखने वालों के रूप में बल्कि नैतिक व्यवस्था के रक्षक के रूप में भी देखना चाहिए।

वैदिक देवता मण्डलः—

वैदिक देवमण्डल जैसा कि उसके वर्गीकरण से स्पष्ट होता है, तीन वर्गों में विभक्त है— (1) द्युस्थानीय (2) अन्तरिक्ष स्थानीय (3) पृथ्वी स्थानीय— यहाँ प्रतिनिधि रूप में प्रत्येक वर्ग के कुछ महान देवताओं का परिचय भी आवश्यक प्रतीत होता है।

द्युस्थानीय :-

द्यौस् — यह निश्चित रूप से प्रायः आकाश तत्व की उपाधि के रूप में प्रयुक्त मिलता है और इस आशय में यह ऋग्वेद में कम से कम 500 बार आया है। द्यौस् शब्द 'दिव्' धातु से चमकने के अर्थ में व्युत्पन्न हुआ है और इस प्रकार इसका अर्थ 'दिव्य' है तथा यह भी देवों के ही समान है। इस प्रकार द्यौस् का अभिप्राय आकाश देवता से है। द्यौस् को भारतीय काल का माना गया है। ऋग्वेद में द्यौस् को स्वयं का एक भी सूक्त अलग से नहीं आया है। बल्कि या तो वे उषा, अश्विन, अग्नि, पर्जन्य, सूर्य, आदित्य, मरुत देवताओं के साथ हुआ है, जिनमें पृथ्वी एक है। जहाँ इनका वर्णन अकेले में करने वाले लोहित वृषभ आदि के रूप में वर्णित है। इनके सम्बन्ध में कहा गया कि वे मेघों के बीच मुस्कराते हैं, यह वर्णन विद्युत् युक्त आकाश का हो सकता है। प्रायः द्यौस् देवों के जनक के रूप में उल्लिखित मिलते हैं।³⁴ ऋग्वेद में एक स्थल पर इनकी भी महान् पिता के रूप में स्तुति की गयी।³⁵ एक अन्य स्थल पर उच्च³⁶ एवं फिर 'उच्च—आवास'³⁷ कहा गया है।

द्यौस् का जहाँ द्युलोकवासी देवता के रूप में मूर्तिकरण किया गया है, वहीं सामान्यता पृथ्वी के साथ यौगिक शब्द 'द्यावा—पृथ्वी' के रूप में संयुक्त कर दिया गया है। यहाँ द्यौस् पिता एवं पृथ्वी माता के रूप में कल्पित ज्ञात होती है।

वरुणः— ऋग्वैदिक युग के महानतम देवों में से वरुण भी एक है। वैसे वरुण के निमित्त केवल 12 सूक्त ही आये हैं जिनमें अकेले इनकी प्रशस्ति है। 24 सूक्तों में इनका आवाहन मित्र के साथ हुआ है। यदि वरुण की महनीयता का आधार सूक्तों की संख्या को ग्रहण किया जाय तो यह पर्याप्त न होगा। इस आधार पर ये तृतीय श्रेणी के देव सिद्ध होंगे। कुछ विद्वान इन्हें चन्द्रलोक (अन्तरिक्ष) तथा कुछ इन्हें द्युलोक का देवता

मानते हैं। प्राचीन ईरान के अहुरमज्दा नामक देवता से भी इनका सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, क्योंकि दोनों में चरित्रगणसाम्य पाया जाता है। कुछ विद्वान वरुण को इण्डो-ईरानी देवता स्वीकार करते हैं। किन्तु आधुनिक मत के अनुसार वरुण भारतीय देवता कहा गया है।³⁸ जो रात्रि के सूर्य का अधिष्ठातृ देव था। यही कारण है कि इसका सम्बन्ध मित्र (सूर्य का उदार रूप) नामक देवता से विशेष रूप से था और इसे नैतिकता तथा सदाचार के देवता के रूप में कहा गया जो सर्वज्ञ है तथा मानव के सत्य और असत्य, पाप, पुण्य आदि सभी आचरणों का द्रष्टा कहा गया है। फलतः वरुण के व्यक्तित्व के मानवत्वारोपण का भौतिक पक्ष कम नैतिक पक्ष अधिक विकसित हुआ।

वरुण ऐसा देवता बताया गया है जो सबको प्यार करता है और सबकी रक्षा करता है। वरुण शब्द आवरणार्थ वृ धातु से निष्पन्न प्रतीत होता है, अतः इसका भौतिक अर्थ रहा होगा 'आवरण या 'व्यापक'; भारतीय परम्परा में यही अर्थ व्यवहृत हैं। ग्रीक देवता औरनस (लतंदवे) के समरूप भी इन्हें माना जाता है। वरुण का बड़ा मोहक चरित्र प्रो० मैक्समूलर महोदय ने चित्रित किया है – "हिन्दू मस्तिष्क की सर्वाधिक मोहक रचना है वरुण। हम उस भौतिक स्थिति की कल्पना आज भी कर सकते हैं, जिसने उसे जन्म दिया है। उस विस्तृत, तारक रचित, द्युतिमान नभ की कल्पना अवश्य ही सरल है। वरुण की स्थितियों ने सर्वाधिक परिवर्तनों का आलिंगन किया है, उसका पूर्ण परिवर्तन हो चुका है, जो ऊपर रहकर इस पृथ्वी के समस्त प्राणियों के कुकर्म और सुकर्म देखता रहता है, दुष्कर्मियों को दण्ड देता रहता है और स्तुति पूर्वक क्षमा याचना को भी स्वीकार करता रहता है।"³⁹

वरुण यद्यपि कि मानवाकृति में कल्पित हैं, उनके हाथ, भुजाएँ और पैर हैं, वे रथ हॉकते बैठते, खाते, पीते हैं, फिर भी इनके नेत्रों का बाह्य पक्ष ही विशेष रूप से व्यक्त हुआ है। मित्र और वरुण का नेत्र सूर्य है। वरुण दूरदर्शी एवं सहस्राक्ष कहे गये हैं। हिरण्मय द्रापि एवं भ्राजमान वसन धारण करते तथा वे और मित्र सूर्य-रश्मिरूपी हाथों से रथ का संवाहन करते हैं। सविता एवं त्वष्टा की तरह वे सुपाणि और पृथु-पाणि हैं।

वरुण के इस मनोहरी मंजुल स्वरूप के विपरीत शतपथ ब्राह्मण में उन्हें खल्वार, पीताक्ष, जरन्मानव के रूप में चित्रित किया गया है।

वरुण हमारे समक्ष सर्वप्रथम एक अग्रगण्य राजा के रूप में आते हैं। वह इन्द्र के सदृश अट्टहास करता हुआ जनजाति का युद्ध देवता नहीं अपितु स्वर्गस्थ एक महान राजप्रासाद में विराजमान शक्ति सम्पन्न राजाधिराज था। उसके चतुर्दिक सहायक देवता जैसे मित्रादि एवं गुप्तचर रहते थे जो समस्त लोक में विचरण करते तथा मर्त्यों के आचरण की सूचनाएं लाते थे। वरुण देवो और मनुष्यों के ही नहीं वरन् सकल सत्ता और समग्र जाति के राजा हैं। इन्द्र की अपेक्षा उन्हें अधिक बार सम्राट कहा गया है। इस प्रकार वरुण जगत के नियन्ता और ऋत के अधिपति के रूप में उल्लिखित है, जिसका स्वरूप विश्वजनीन नियमों की संज्ञा के साथ संयुक्त था। डॉ० बासम⁴⁰ ने कहा है कि 'यह कल्पना ऋग्वेदीय विचारधारा की सर्वोच्च उड़ान थी।' वरुण, आकाश, पृथ्वी एवं सूर्य के निर्माता तथा माया रूप में सर्वत्र व्याप्त कहे गये हैं। यही कारण है कि वरुण को विश्वतश्चक्षुः (सर्वत्र दृष्टि रखने वाला), सुक्रतु (अच्छे कर्मों को करने वाला), धृतव्रत (नियमों का धारण करने वाला) और सम्राट (समान रूप से प्रकाशनशील और शासक) कहा गया है।

समस्त आर्य देवों में नैतिक दृष्टि से वरुण सर्वश्रेष्ठ था। सर्वेश्वरवादी सिद्धांत के विरुद्ध आस्तिक विचार धारा के अर्थ वह सर्वव्यापी था। उसे अत्यधिक निर्मल एवं पवित्र देवता कहा गया है। केवल याज्ञिक कृत्यों से ही उसकी कृपा नहीं पायी जा सकती थी, क्योंकि पाप एवं ऋत विरुद्ध कार्यों से उसे घृणा थी। नैतिक आचरणों के द्वारा ही वरुण की कृपा प्राप्त की जा सकती थी। इस प्रकार वरुण समस्त प्राणियों के शुभ-अशुभ सभी कार्यों का ज्ञात और तदनुरूप फल प्रदान करने वाला माना गया। उसका सम्बन्ध आप से स्थापित किया गया, जिसका अर्थ जल से अभिप्रेत है। यही कारण है कि वरुण का निवास परमे व्योमान् में बताया गया है तथा सूर्यचक्षु होना तथा वर्षा कराना उनका गुण एवं कार्य है। उनके राजा या शासक विषयक स्वरूप के विकास के सम्बन्ध में कीथ⁴¹, महोदय का कथन है कि – 'सर्वशक्तिसम्पन्न शासक से सम्बद्ध धारणा का उस प्रभूत

आकाश से विकसित होना अधिक स्वाभाविक है, जिसमें सूर्य अपनी नियत 'तर्वनि' पर विचरण करता है और मनुष्यों के कर्मों का सर्वेक्षण करता है।

वरुण एवं मित्र दोनों अति निकट से सम्बन्धित देवता ज्ञात होते हैं। मित्र, वरुण का साथ-साथ उल्लेख ऋग्वेद में अनेकशः हुआ है। मात्र एक ही मंत्र ऐसा है जो मित्र को अकेले सम्बोधित करता है। मित्र को प्रकाश का प्रतीक मानकर दिन का देवता कहा गया। इस आशय का विचार स्वामी सर्वानन्द⁴² ने भी व्यक्त किया है। मित्र इण्डो ईरानी देव 'मिथ्र' के समतुल्य ज्ञात होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों से भी मित्र दिन के साथ तथा वरुण रात्रि के साथ सम्बद्ध सूचित होते हैं। इस सम्बन्ध में मैकडानेल⁴³ का अभिमत है कि 'निश्चित रूप से इस दृष्टिकोण का आरम्भ मित्र के प्रमुख रूप से सूर्य के साथ सम्बद्ध होने की धारणा द्वारा ही हुआ होगा और इसके विपरीत ही वरुण रात्रि के देवता बन गये होंगे।'

द्युस्थानीय देवों में द्यौस प्राचीनतम है, जिन्हें भारोपीय देवता स्वीकार किया गया है। उस समय सर्वोच्च देवता माना जाता था। भारतीय युग में द्यौस् का महत्व कुछ कम हो गया। इसका मुख्य कारण यह था कि इस समय मित्र एवं वरुण प्रधान हो गये। उपर्युक्त द्युस्थानीय देवताओं के अतिरिक्त सूर्य सविता, पूषन्, विष्णु, विवस्वान्, अश्विन, उषा एवं चन्द्रमा भी आकाश के देवता के रूप में स्तुत्य थे।

अन्तरिक्ष स्थानीय :

इन्द्र-वैदिक आर्यों के महानतम राष्ट्रीय देवता के रूप में इन्द्र स्तुत है। इन्द्र की स्तुति सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता का लगभग चतुर्थांश 250 सूक्तों में आह्वान किया गया है। इन्द्र का नाम भारत-ईरानी काल के देवता का है, लेकिन इनके नाम का अर्थ अनिश्चयात्मक स्थिति में हैं। इन्द्र किसी प्राकृतिक घटना के वाचक नहीं दृष्टिगत होते यही कारण है कि इनका व्यक्तित्व अत्यधिक मूर्तीकृत हो गया है। इसके सम्बन्ध में अन्य वैदिक देवताओं की अपेक्षा पुरा-कथाएं अधिक प्राप्त होती हैं। मैक्समुलर महोदय इन्द्र को आर्यों के भारतीय शाखा का ही देवता मानते हैं। उनका कथन है कि 'इन्द्र नाम

केवल भारत में ही पाया जाता है। चूँकि इन्द्र का नाम आर्यों के केवल भारतीय शाखा में ही मिलता है, अतः यह परिणाम निकलना अनुचित न होगा कि इन्द्र की कल्पना वैदिक ऋषियों ने भारत में पहुँच कर की गयी। और यदि इन्द्र की कल्पना विभाजन के पूर्व की होती तो आर्यों की अन्य शाखाओं में भी उसका कोई न कोई नाम अवश्य पाया जाता।⁴⁴ इस आशय का विचार स्वामी सर्वानन्द⁴⁵ ने भी व्यक्त किया है। जबकि कीथ महोदय⁴⁶ मत है कि भारतीय एकता के युग में इन्द्र का अस्तित्व इन्द्र नामक दानव, वेरेथ्रघ्न नामक विजयदेव – जो स्पष्टतया वृत्रहन् के तुल्य है – की सत्ता के सम्भव माना गया था। इस सम्भावना को तेल-अर्यमना के लेख से पुष्टि मिली है, जिसमें देवों की सूची में मित्र और नासत्या के साथ इन्द्र का नाम भी पाया गया है।

अन्तरिक्ष स्थानीय देवों में इन्द्र सर्व प्रमुख हैं। इनका मानवीकरण वैदिक ऋचाओं में अपनी पूर्णता को प्राप्त है। मैकडानेल महोदय⁴⁷ इन्द्र को भारतीय ईरानी काल का देवता स्वीकार करते हुए यह मत व्यक्त करते हैं कि इन्द्र का अर्थ अनिश्चित है, किसी प्राकृतिक घटना का वाचक न होने के कारण इन्द्र का व्यक्तित्व अत्यधिक मूर्तीकृत हो गया है और वास्तव में वेदों के किसी भी अन्य देवता की अपेक्षा यह पुराकथा शास्त्रीय कल्पनाओं से कहीं अधिक परिपूर्ण है। फिर भी इनके चरित्र का महत्व पर्याप्त रूप से स्पष्ट है।

इन्द्र के जन्म का वृत्तान्त एक विलक्षण घटना के रूप में विवृत मिलती है। ऋग्वेद के ऋचाओं⁴⁸ से यह उद्घाटित होता है कि उनका स्वयं का हठ है कि आसान मार्ग से पैदा न होकर माता के पार्श्व से जन्म लेंगे। प्रो० मैकडानेल⁴⁹ ने इन्द्र के इस प्रकार के जन्म को मेघों के मध्य चमकती हुई विद्युत स्वीकार किया है। एक स्थल पर कहा गया है कि इन्द्र के जन्म लेते ही आकाश प्रज्वलित हो गया।⁵⁰ सूर्य रूपी चक्र गतिमान हो गया।⁵¹ इन्द्र की जन्मदात्री माता भी विविध रूपों में विवृत हैं। एक स्थान पर उनकी माता को गृष्टि (गाय) और उन्हें गार्ष्ट्य (उसका वत्स) कहा गया है।⁵² ऋग्वेद के दसवे मण्डल⁵³ में उनकी माता को निष्टिग्री कहा गया है जिस का तादात्म्य सायण महोदय अदिति से स्थापित करते हैं। अग्नि की भॉति इन्द्र के माता-पिता के रूप में पृथ्वी एवं

दौस को श्रेय दिया गया है।⁵⁴ एक स्थल⁵⁵ पर दैत्यों के विनाश हेतु देवों द्वारा इन्द्र की उत्पत्ति का उल्लेख है जबकि पुरुष सूक्त⁵⁶ में इन्द्र एवं अग्नि दोनों को विराट पुरुष के मुख से उद्भूत बताया गया है। अग्नि और पूषन् कहीं उनके भाई तो कहीं पुत्र के रूप में वर्णित हैं। इन्द्राणी उनकी पत्नी कहीं गयी हैं। ऐतरेय ब्राह्मण⁵⁷ उनके सेना और प्रसाहा नामक दो पत्नियों का उल्लेख करता है। वेदोत्तरकाल में उनकी पत्नी रूप में पुलोमन की पुत्री शची का उल्लेख है और वे शचीपति कहे गये हैं। अथर्ववेद⁵⁸ में आये एक आख्यान से ज्ञात होता है कि इन्द्र विलिस्तेङ्गा नामक एक आसुरी के प्रेमापाश में आवद्ध होकर असुरों के मध्य रहने गये थे। उस समय स्त्रियों के बीच स्त्री रूप एवं पुरुषों के बीच पुरुष रूप धारण कर लेते थे। जैमिनिय एवं पंचविश ब्राह्मण⁵⁹ में एक अश्लील कहानी आयी है, जिसके अनुसार सुमित्र के रूप में इन्द्र ने दीर्घाजिह्वी नामक एक असुर से अभिगमन किया था, जिसके शरीर में उनके क्षोभ भरे चुम्बनों से असंख्य भाग बन गये थे।

प्रारम्भ में इन्द्र बल एवं युद्ध के देवता के रूप में दृष्टिगत होते हैं। यही कारण है कि ये अनवरत युद्ध और प्रसार में रत आर्यों के अत्यंत लोक प्रिय और महत्व के देवता बन गये। इन्द्र की कल्पना मानवीय गुणों से ओतप्रोत विजेता के रूप में की गयी है जो सोमपान और भोजन में विशेष रूप से रुचि रखते हैं। ये पराक्रमी योद्धाओं को विजयश्री प्रदान करने वाले शत्रुओं को पर्वत की गुफाओं में खदेड़ने वाला कहा गया है – यो दास वर्णभधर गृहाकः।⁶⁰

अन्य देवताओं की तुलना में सोमपान का व्यसन इन्द्र को सर्वाधिक था। सोमपान के सन्दर्भ में इनके पेट को झील जैसा बताया गया है इन्हें सुश्रिप अथवा शिप्रिन (सुन्दर अक्षरों वाला) कहा गया है। इनके लम्बे-लम्बे केशों एवं दाढ़ी का भी वर्णन मिलता है तथा इनका वर्ण स्वर्णिम बताया गया है। वज्र इनका प्रमुख अस्त्र कहा गया है। इन्हें इसी आधार पर वज्रभूत (वज्र धारण करने वाला) विज्रदत्त (वज्र से युक्त) तथा वज्रदक्षिण (दाहिने हाथ में वज्र धारण करने वाला) कहा गया है। इनके वाणों को स्वर्णिम, शतनोकी वाला और सहस्र पंखों से युक्त कहा गया है। रथेष्ठा भी इन्द्र की उपाधि के रूप में

वर्णित है। इनके रथ को कहीं-कहीं दो से अधिक सहस्रों अश्वों से खींचा जाने वाला कहा गया है। भैसों एवं वृषभों का मांस भी इन्द्र का खाद्य बताया गया है।⁶¹

इन्द्र के वीर कृत्यों में उनकी सहायता मित्र एवं मरुद्गण भी करते हैं। इस प्रसंग में इन्हें विद्युत सृष्टि एवं स्वर्गस्थ सलिलों को निम्नाभिमुख करने का श्रेय प्रदान किया गया है। वास्तव में इन्द्र भारतीय आर्यों के युद्ध में सहायक देवता हैं चाहे वे अन्य आर्य शत्रुओं से युद्ध कर रहे हो या दासों अथवा दस्युओं से। उनमें दुरात्माएं भी सम्मिलित हैं जो वस्तुतः घृणित जाति के देवता हैं। ऋग्वेद⁶² में ही उन्हें लिङ्गोपासको का प्रतिपक्षी कहा गया है।

इन्द्र का एक प्रमुख कृत्य वृत्र वध है। वृत्रासुर ने सम्पूर्ण आकाश मण्डल को आच्छादित कर लिया था और वर्षा को अवरुद्ध कर दिया। उन्होंने अपने वज्र से प्रहार कर उसे मार डाला और वर्षा के जल को मुक्त किया, इसलिए उन्हे वृत्रहन, तथा 'अप्सुजित्' कहा गया है। इन्द्र के इस कार्य का वर्णन विविध रूपों में मिलता है, एक जगह कहा गया है कि उन्होंने जल पर शयन करते हुए दैत्यों को पराभूत किया।⁶³ दूसरे स्थल पर दानव द्वारा अवरुद्ध किये गये जल धाराओं को मुक्त करने वाला कहा गया।⁶⁴ साथ ही बाढ़ के अधिक जल को समुद्र में बहाने वाला भी उन्हें बताया गया है।⁶⁵ इस रूप में इन्द्र का दर्शन⁶⁶ वृष्टि के देवता के रूप में कर सकते हैं साथ ही कृषि कर्म के अपरिहार्य तत्व को प्रदान करने वाले कृषि देवता के रूप में भी उनका व्यक्तित्व उभर आता है। कहीं-कहीं झंझावात और तूफान के देवता के रूप में इन्द्र चित्रित मिलते हैं। दानवीय शत्रुओं के नगरों को छिन्न-भिन्न कर ढहाने के कारण उन्हें पुरन्दर एवं पुरानामभेत्ता भी कहा गया।

सब मिलाकर इन्द्र एक सहानुभूति पूर्ण सहायक देव दृष्टिगत होते हैं, जो अपने सुतिकर्त्ताओं के मुक्तिदाता स्वरूप स्वीकार किये गये हैं। इन्द्र समस्त प्रकार के समृद्धि को प्रदान करने वाले क्षमता से युक्तमाने गये हैं। गोधन पूर्व-वैदिक युग का प्रमुख धन था इस लिये 'गोपति' उपाधि से युक्त भी कहे गये हैं। इन्द्र के समस्त क्रिया कलापों एवं

चारित्रिक विशिष्टताओं को दृष्टिपथ में रखते हुए मैक्डानल महोदय ने लिखा है कि – 'ये सार्वभौम सम्राट हैं, जो न तो विश्व के चिरन्तन विषयों के प्रयोगकर्ता के रूप और न एक नैतिक शासक के रूप में, वरन् एक ऐसे योद्धा के रूप में जिनका शक्तिशाली हाथ विजय अर्जित करता है, जिनकी अक्षय उदारता मानव-मात्र को श्रेष्ठतम् समृद्धियाँ प्रदान करती है और जो उल्लासप्रद महान सोम-यज्ञों में आनन्द का अनुभव करते हैं, स्तुतियों को सम्पन्न करने वाले पुरोहित वर्ग पर समृद्धि की वर्षा करते हैं।

अन्तरिक्ष स्थानीय अन्य देवता त्रित, आप्त्य, अपानपात्, अहिर्बुध्न्य, अजएकपाद, मातरिश्वन्, वायु और वात, पर्जन्य, आपः, रुद्र, मरुद् या रुद्रगण हैं। इनसे सम्बन्धित ऋचायें भी ऋग्वेद एवं अन्य संहिताओं में मिलती हैं।

पृथ्वी स्थानीय महान देवता :

अग्नि- ऋग्वेद के लगभग 200 सूक्तों में स्तुत अग्नि वैदिक युगीन समस्त पृथ्वी स्थानीय देवताओं में ही सर्वाधिक महत्त्व के देवता नहीं प्रतीत होते हैं, अपितु द्युस्थानीय एवं अन्तरिक्ष स्थानीय देवों में भी प्रमुख दृष्टिगत होते हैं। अग्नि के विविध जन्मों एवं विविध रूपों के आधार पर उनके 268 नामों का निर्वचन उपलब्ध होता है। इन नामों से अग्नि के भौतिक रूप, वैदिक यज्ञ संस्थाओं में उनका स्थान, प्रकार्य तथा अन्य देवों के साथ उनका समीकरण स्पष्ट होता है।

भौतिक रूप से अग्नि मानव जीवन के अति सन्निकट प्रतीत होते हैं। अग्नि के इस भौतिक रूप की उपासना भारत-ईरानी युग से ही विकसित हुई है। जब भौतिक अग्नि में देवत्व को आरोपित किया गया तब भी उनके भौतिक विशेषताओं को विस्मृत नहीं किया जा सका। जैसे यज्ञ में हवि पहुँचाते समय उन्हें अश्व, रथ आदि भौतिक उपादानों के रूप में परिकल्पित किया गया है। आग की लपटों के सादृश्य के आधार पर जिह्वाओं के साथ समीकृत कर समस्त वस्तुओं को अपने अन्दर समाहित करने वाला कहा गया है। इतने ही नहीं अग्नि मानवीय परिवार में माता, पिता मित्र, बन्धु, नेता, सेवक आदि विभिन्न लौकिक सम्बन्धों के रूप में उपमित किये गये हैं।

अग्नि के देवशास्त्रीय जनक—जननी द्यौस और पृथ्वी अथवा त्वष्टा और आप हैं। किन्तु देवताओं के द्वारा भी उनकी उत्पत्ति विवृत है, यद्यपि कि वे उनके पिता भी हैं। अग्नि जलों से उत्पन्न होते हैं। वे जलों में उपोढ़ वृषा हैं। इसका तात्पर्य है मेघ जलों से प्रगट होता है। इस दृष्टि से अग्नि अपांनपात के रूप में एक पृथक देवता बन गये। तृतीय स्थान में अग्नि का जन्म द्यौस में होता है। द्युवस्थानीय अग्नि सूर्य हैं जो प्रातः काल उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अग्नि के तीन जन्मों का उल्लेख है और वे त्रिविध कहे गये हैं।

अग्नि का पार्थिव रूप अरणि मन्थन से सम्बन्धित उनके जन्म विषयक आख्यान से स्पष्ट है। आर्य—अनार्य संघर्ष काल में अग्नि रक्षक के साथ युद्ध के देवता के रूप में सम्मानित किये गये। अग्न्युपासक आर्य समराङ्गण में अपने गृहपति एवं रक्षकदेव अग्नि का आह्वान करते हुए दृष्टिगत होते हैं। अग्नि का पौरोहित्य रूप पूर्व वैदिक काल में ही दृष्टिगोचर हो गया था। वैसे अग्नि का प्रारम्भिक रूप गृह देवता का है। यही गार्ह्यपत्याग्नि कालान्तर में अग्नि के विविध स्वरूपों के उद्गम स्थल बने। जब आर्य अनार्यों से युद्ध विचलित होने लगे तब इन्द्र के अतिरिक्त अग्नि की सहायता ग्रहण किये फिर सफलता ने उनका वरण किया। तब से अग्नि एक महान योद्धा के रूप हमारे सम्मुख आये।

अग्नि भौतिक जीवन में सम्बद्ध सुख समृद्धि के प्रमुख आधार धन के देवता 'रत्नाधातमम्' के रूप में भी स्तुत है। इन्हें रत्नधा, द्रविणोदा आदि विविध उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। अग्नि को कहीं अशीर्षा और अपाद बताया गया है तो कहीं घृतपृष्ठ, घृत—मुख, घृत लोभ, अर्चिलोभ या वभ्रुलोभ कहा गया है। उनके तीन सौ सात जिह्वाएं हैं, जो परवर्ती साहित्य में विविध अभिधान ग्रहण कर लेती है। उन्हें घृताक्ष, चतुरक्ष, सहस्राक्ष तथा सहसशीर्षा भी कहा गया है। उन्हें धनुर्धर भी बताया गया है इस प्रकार अग्नि—काया जो वैदिक वाङ्मय में विवृत्त है, उसमें पर्याप्त विरोधाभास परिलक्षित होता है। अग्नि का घृत से अत्यधिक प्रेम परिलक्षित होता है, घृत को देख एवं पाकर

अग्नि अधिक गतिमान एवं प्रज्वल्यमान होते हैं, अग्नि हिरण्यश्मश्रु एवं सज्जवलदन्त हैं। पशु समुदाय में अग्नि की व्यापकता परिलक्षित होती है।

अग्नि वास्तव में समस्त देवों के गुणों से युक्त है। इसीलिए अग्नि को वरुण, मित्र, इन्द्र, सूर्य प्रजापति आदि अन्यान्य देवों से समीकृत किया गया है। अग्नि का आध्यात्मिक स्वरूप यज्ञों में अग्निचयन से सम्बद्ध कल्पनाओं में प्रतिबिम्बित हुआ है। यज्ञ में अग्निवेदी का निर्माण मात्र कर्म का एक साधारण अंग नहीं, वरन् चयन का तत्त्व प्रत्यक्षतः एक रहस्य है। कालान्तर में क्रमिक विकास के परिणाम स्वरूप अग्निवेदी की संरचना ब्राह्मण धर्म का प्रतीक बन गयी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रकृति के उन्मुक्त पर्यक में विचार करने वाले आदि कालीन मानव का अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि पिण्ड नहीं अग्नि उनके ऊपर करुण या क्रोध करने वाले तथा वर या दण्ड प्रदान करने वाले समर्थ देव प्रभु प्रतीत हुए। अग्नि देव भी ऐसे ही प्रकृतिस्थ चेतन स्वयं दैवी शक्ति हैं जिनका त्रिविध विभाजन पृथिवी स्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय, द्युस्थानीय के रूप में है, जिनमें अग्नि का सर्वव्यापकत्व परिलक्षित होता है। जैसे अग्नि पृथ्वी के प्रमुख देव हैं फिर भी उनका ताद्रूप्य अन्य देवों से है। जैसे अग्नि पृथ्वी के प्रमुख देव हैं, फिर भी उनका ताद्रूप्य अन्य देवों के साथ स्थापित कर उन्हें द्युस्थ एवं अन्तरिक्षस्थ भी कहा गया है।

पृथ्वी स्थानीय देवता के रूप वृहस्पति, सोम, नदियाँ, पृथ्वी एवं अग्नि की स्तुति भी वैदिक संहिताओं में की गयी है।

सामान्य प्रकृति की लोक देवियाँ-:

उषा के संदिग्ध अपवाद को छोड़कर ऋग्वेद की एक भी देवी को वास्तविक अर्थ में ही महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। सरस्वती और पृथिवी का उल्लेख पहले हो चुका है। सूत्र ग्रन्थों में भूमि भी आती है; किन्तु उनके स्वरूप में कोई वैशिष्ट्य नहीं है। वे निःसंदेह पृथिवी देवी की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हैं। ऋग्वेद उषा की बहन और द्यौस की

पुत्री के रूप में रात्रि की भी स्तुति प्रस्तुत करता है। यहाँ रात्रि की कल्पना भास्वती तारा, प्रभासित, रजनी के रूप में की गयी है जो उपत्यका एवं अधित्यकाओं पर छा जाती है, अन्धकार को ध्वंस करती है और साथ ही वृकों और चोरों का परिहार करती है। रात्रि का आह्वान कुछ वार उषा के साथ देव युग्म के रूप में आता है और उनका सम्मिलित महत्व उषा के साथ रहने वाले रात्रि के सम्बन्ध से हस्तगत हो जाता है।

प्रकृति के साथ स्पष्ट: संबद्ध एक अन्य देवी पृश्नि है। वे मरुतों की माता है। वस्तुतः वे प्रलयकारी मेघ हैं। पृश्नि शब्द एक विशेषण है जिसका अर्थ चितकबरा। इसका प्रयोग वृषभ ,गाय और बहुवचन रूप में गौओं के लिए हुआ है जो इन्द्र के हेतु सोम दुहाती है। अपेक्षाकृत अधिक रोचक चरित्र सरण्यू का है उनका दर्शन ऋग्वेद के एक रोचक आख्यान से होता है। इसके अनुसार त्वष्टा ने अपनी पुत्री के हेतु विवाहोत्सव रचाया। इसकी खबर सुनकर सभी विश्व जुट गया लेकिन विवाह के समय सरण्यू छिप गयी। मालूम होता है कि जब विवस्वन्त के साथ विवाह नहीं कर दिया गया तब तक देवाताओं ने उन्हें मर्त्यों से छिपाये रखा। निदान स्वरूप उन्हीं जैसी एक मर्त्यस्त्री की रचना करके देवताओं ने उसे विवस्वन्त को दे दिया। कहा जाता है कि उस समय सरण्यू ने अश्विनों को जन्मा और अन्त में वे दोनो को पीछे छोड़ गयी। यास्क का कहना है कि उन्होंने सर्वप्रथम यम और यमी को जन्म दिया फिर घोड़ी का रूप धारण करके वे चल दी। विवस्वन्त ने घोड़े का रूप धारण करके उनका पीछा किया। इनके संयोग से अश्विनी का जन्म हुआ और स्त्री पक्ष में उसी आकृति की मनु सावर्णि की उत्पत्ति हुई। इस विचित्र आख्यायिका की तुलना तिल्फोरिसिन एरिनस के आख्यान से की जा सकती है, जिन्होंने विश्व रूप में अरेइओन को जन्म दिया था। इन दोनों आख्यानों का संबंध सम्भवतः एक ही कोटि के विचारों से है, लेकिन इन विचारों के आधार भूत प्राकृतिक दृश्य को ढुँढ़ निकालना कठिन है। सरण्यू का अश्व रूप ऋग्वेद में ही नहीं आता है। अनुमान इसका किया जा सकता है कि इस विषय में कोई प्राचीन परम्परा रही हो अथवा यह उनकी कल्पना मात्र हो संभव यह भी है कि इसका आधार अश्विन् विषयक उनकी अपनी धारणा रही हो जिन्हें न केवल अश्व पति अपितु अश्व रूप भी माना जाता रहा

होगा। ऐसी अवस्था में सरण्यू की एरिन्स के साथ तुलना संभवतः ग्रह्य नहीं। दूसरी ओर यदि सरण्यू और उषस् की तुलना की जाय तो उन्हें 'उषस्' के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है। 'सरण्यू' शब्द 'उषस्' की त्वरा को ज्ञापित करता है क्योंकि इसकी व्युत्पत्ति गमनार्थक सृ धातु से हुई है। सरण्यू का एरिन्स के साथ शब्द सारूप्य जंचता नहीं क्योंकि यह ध्वनिशास्त्र से मेल नहीं खाता ब्लूम फील्ड सरण्यू का सम्बन्ध तूफान के साथ स्थापित करते हैं और 'एरिन्स' के साथ इनका ताद्रूप्य स्वीकार करके एरिन्येस् के स्वरूप का मूल सरण्यू में ढूँढते हैं। एस० राइनाख ने यूरोप में एक प्राचीन अश्व देवी को ढूँढ निकाला है। जो मूलतः 'गणचिन्हवादी' जो आर्केडिया में क्लोएलिया के आख्यान में और गॉल में एपोना के रूप में पाई जाती है।

एक समुदाय उन देवियों का भी है जिनके विषय में कहा जा सकता है कि परवर्ती संहिताओं में प्राकृतिक पदार्थों की देवियां हैं। आज भी ऋग्वेद उनके स्वरूप को अनिश्चित एवं अव्याख्यात ही छोड़ देता है वे हैराका और सिनीवाली राका ऋग्वेद में दो बार समृद्ध एवं उदार देवी के रूप में उभरी है। दानार्थक रा से निष्पन्न उनका नाम उनके इस स्वरूप का व्यापक है। ककभती, सुहस्ता एवं स्वंगुली सिनीवाली को देवताओं की बहन कहा गया और उनसे संतान की प्रार्थना की गयी है उनका आह्वान राका, सरस्वती और गुंगू के साथ किया गया है। गुंगू एक मात्र इसी स्थल पर आयी है। परवर्ती संहिताओं की योजना में राका पूर्णमासी है, अनुमति शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी है, कुद अभिनव चन्द्रमा है और सिनीवाली अभिनव चन्द्रोदय के पूर्व का दिन है। सिनीवाली को अथर्ववेद विष्णु पत्नी बताता है। ऋग्वेद इनके बारे में कुछ नहीं प्रस्तुत करता और अनुमति को वह बहुत गौण स्थान देता है; वहीं दूसरी देवियाँ उनके विषय में भी निश्चय के साथ कुछ कहना कठिन है, इनमें अन्यथा अज्ञात गुंगू भी शामिल है।

वैदिक विचार धारा के विकास में सहायता देने वाली एक और देवी वाक् है; इसका मूल संभवतः प्रकृति में ढूँढा जा सकता है। ऋग्वेद के वाक् सूक्त में वे अपने आप को सभी देवों की सहचारिणी, एवं मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि और अश्विनों की धारिणी तथा ब्रह्म देवियों के प्रति रुद्र के धनुष का आतान करने वाली घोषित करती हैं। वे अपना

अधिष्ठान जलों में और समुद्र में बताती हैं और अपने स्वरूप को सर्वव्यापी बनाकर दिखाती है। एक अन्य सूक्त में उन्हें देवताओं की रानी कहा गया है। ब्राह्मणों में उनकी प्रसिद्धि विशेषतः सोम—ऋथ के आख्यान के कारण है। सोम को गंधर्वों से स्त्री के मूल्य पर खरीदा जाता है लंपट गन्धर्वों को लोभ देकर उनके द्वारा अभिरक्षित सोम को प्राप्त करने के लिए वाक् स्त्री का रूप धारण करती हैं। ऋथ के पूर्व वे देवताओं से लौट आने की प्रतिज्ञा करती है और बुलाये जाने पर वैसा करती भी है। प्रतीत होता है कि ऋग्वेद की इस देवी में इतनी सजीवता व वास्तविकता थी कि इसे कोरी भावात्मक मानना उचित न होगा और यह संभवतः एक महत्वपूर्ण तथ्य है निघण्टु में इसकी गणना अन्तरिक्ष के देवों में की गयी है। अतः संभव है कि इस देवी की कल्पना का आरम्भ विन्दु स्तनयित्तु रहा हो जिसे निरुक्त में मध्यमा वाक् बताया गया है। इसका विकास मानव की वाणी के संबंध में हुआ है। उमा जो वैदिक काल के अन्तिम भाग में बुद्ध की पत्नी के रूप में उभरी है, संभवतः पर्वत देवी है, क्योंकि उनके हेतु हेमवती विशेषण का प्रयोग हुआ है और परवर्ती देवशास्त्र में तो वे हिमवन्त की पुत्री बनकर उभरी ही है। दूसरी ओर स्मरण रखना चाहिये कि वैदिक ग्रन्थों में रुद्र वस्तुतः पर्वत दे हैं; अतः स्वाभाविक था कि उनकी पत्नी भी पार्वती ही हों। फलतः यहां भी हम उसी सिद्धांत का निदर्शन पाते हैं जिसके अनुसार देवता विशेष के पार्श्व में एक एक देवी की स्थापना वांछनीय समझी जाती थी, जैसे की इन्द्राणी एवं अन्य देवों की पत्नियां उमा में द्रविड़ों की मातृ देवी के एक रूप का दर्शन रोचक प्रतीत होता है।

वास्तविक हविष् से उत्पन्न होने वाली देवी 'इडा' है। दूध और घी भरी हविष् अनेक बार ऋग्वेद में बार—बार परवर्ती साहित्य में आती है। अदिति की भौति और उसकी अपेक्षा कहीं अधिक स्वाभाविक रूप में 'इडा' को 'गौ' से सम्बन्धित माना गया है। कर्मकाण्ड में उसे और अदिति के प्रतिनिधित्व के लिये गौ का उपयोग किया गया है और उसे 'इडा' नाम से सम्बोधित किया गया है। 'इडा' को धृत हस्ता व धुतपदी बताया गया है। जो विशेषण उनके स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। वे सामान्य रूप में सरस्वती और भारती के साहचर्य में आती है। अग्नि को उनका पुत्र कहा गया है; क्योंकि 'इडा' का

अधिष्ठान उनका जन्म स्थल है। पुरुरवस नामक एक मर्त्य को 'ऐड' बताया गया है, जिससे वे इडा की सन्तान प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद में इनका संबंध उर्वशी दुधिकावन और अश्विनों के साथ ही उभरा है। वे मनु के आख्यान में भी आती है, जल प्लावन के बाद मनु ने उनके माध्यम से मानव जाति को उत्पन्न किया था। यहाँ 'इडा' को मनु की पुत्री बताया गया है। उन्हें मित्र और वरुण की भी पुत्री बताया गया है। 'इडा' के साहचर्य में आनेवाली भारती स्पष्टतया भारती की आहुती है, वह तथ्य उपासना में भारती की महत्ता के साथ संगत है, ऋग्वेद में 'इडा' सरस्वती और राका के साथ 'वृहद्विवा' नामक देवी का भी उल्लेख आया है लेकिन उसके स्वरूप के विषय में और कुछ भी ज्ञात नहीं है।

सूर्य और सोम सम्बन्धी चन्द्रमा से अलग नक्षत्रों की पूजा के विषय में साक्ष्य का अभाव खलता है फिर वेद में ग्रहों को भी नगण्य आकृष्ट किया है। वैदिक भारतीयों को उनका ज्ञान था, इस बात को हम माने या न माने इतना तो निश्चित है कि ऋग्वेद में उनकी प्रत्यक्ष उपासना नहीं की जाती थी। उनकी गणना भी वैदिक कर्मकांड के अन्तिम युग ही में पहुंच कर हुई है, उदाहरणार्थ बौधायन धर्मसूत्र के एक उत्तरकालीन वाक्य में सूर्य, चन्द्र अंगारक, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर राहु और केतु का उल्लेख आता है। प्रतीत होता है कि ग्रह इस अभिधान लक्षित (ग्रह – पकड़ने वाला) तारामण्डल संबंधी प्रभाव प्राचीन काल के भारतीयों को न पता था।

नक्षत्रों का दर्शन आरम्भ में सोम और नक्षत्रों के साथ उसके विवाह के आख्यान से होता है, जिसका उल्लेख परवर्ती संहिताओं और ब्राह्मणों में मिलता है। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत उन्हें यथा अवसर आहुतियाँ तो दी गयी हैं, लेकिन उनका धार्मिक मूल्य नगण्य ही उभर पाया है। यही बात निम्नलिखित सत्ताओं पर भी लागू है, ऋतु मास, पक्ष दिन रात्रि, वर्ष, अमावस्या, पौर्णमासी और दर्शः आज भी अन्तिम तीन सत्ताओं का समादर अथर्ववेद के सूक्तों में किया गया है, इनकी अपेक्षा कहीं अधिक निखरा व्यक्तित्व चन्द्रकलाओं, अनुमति, सिनीवाली, राका और कुहू में निविष्ट किया गया है, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है, इनकी भी अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट एकाष्टका है। यहां वर्ष के आरम्भ के आसपास पड़नेवाला एक चाँद दिवस है, इसकी स्तुति प्रजापति की पुत्री

और इन्द्र की माता के रूप में की गयी है। अष्टकाओं के जो कृष्ण पक्ष के मध्य के 'चान्द्र' दिवस है, महत्व का असली कारण उस समय पितरों के निमित्त दी जाने वाली आहुतियों के साथ उनका संबंध है। पितरों का चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध अभिज्ञात था, क्योंकि उपनिषदों में इसे सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

गृह्य कर्मकाण्ड में ध्रुव तारे को कुछ समादर दिया गया है ऐसा ही समादर सप्तर्षि मण्डल अर्थात् सात ऋक्ष और अरुंधती को प्रदान किया गया है। सप्तर्षियों को ऋग्वेद ही में पुरुकुत्स की पत्नी को त्रसदस्यु नामक पुत्र प्राप्त कराने का गौरव प्राप्त है, लेकिन वे निःसन्देह प्रेतात्मानुप्रविष्टि तारे हैं। कहा जाता है कि स्वर्ग में उन्होंने अपना निवास तपस्या करने के ध्येय से बनाया है, उनके साथ पांच 'अध्वर्युपक्षी' के गूढ पद की रक्षा करने के लिये नियत किये गये हैं। पृथिवीस्थ सप्त होताओं के साथ उनका सम्बन्ध स्पष्ट है चाहे ये उनके पूर्व रूप हो अथवा उत्तर रूप। पाँचों अध्वर्यु वस्तुतः ग्रह हैं, क्योंकि ये उन्ही की तरह गतिशील हैं। यह विचार बहुत संतोषजनक प्रतीत नहीं होता। रहस्यात्मक तो आकाश के बीच में स्थित पांचो वृष हैं। पारिभाषिक शब्द से निश्चित है कि वे ग्रह नहीं हैं। हम अधिक से अधिक यह मान सकते हैं कि वे भारतीय मनीषा द्वारा आकलित किसी तारामण्डल के तारे है। सूर्य चन्द्र और तारे ध्रुवतारे में केन्द्रित है इस परवर्ती मत से निम्न दृश्य की तुलना करते हुये, हिलेब्राण्ड्ट इस मत पर पहुंचते हैं कि ध्रुवतारा न केवल गृह्य सूत्रों के ध्रुव में प्राप्य है बल्कि वह अध्वर्यु के रूप में भी आता है। मतान्तर आध्वर्यु को सूर्य बताता है। यह तो स्पष्ट है कि ऋग्वेद में ध्रुवतारे के अस्तित्व के विषय में किसी अन्य प्रमाण के अभाव में अध्वर्यु को ध्रुवतारा मानता तो कोई बुद्धिमानी नहीं है। एतश की जो कि सामान्यतः सूर्य का एक अश्व माना जाता है, तुलना परवर्ती अरुण के साथ करते हुये वे उसे प्रातः और सायंकालीन तारा मानते हैं, अरुण वैदिक साहित्य में एकदम नहीं आते। आख्यान गत विविध चरित्रों में कृतिकाओं आकाशगंगा और अन्य तारों को खोजने के लिये प्रयास किये गये, लेकिन उनके परिणाम संतोषजनक नहीं निकल पाये हैं।

ख. बौद्ध देव पम्पररा

बौद्ध लेखक अतीत के ऋषियों में अट्टक वामदेव, विश्वामित्र यमदग्नि तथा भृगु⁶⁷ का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं कि ये ऋषि मंत्र कर्ता थे तथा उस समय के ब्राह्मण द्वारा रचित मंत्रों का पाठ किया करते थे। बौद्धों ने ब्राह्मणों के शुकवतमंत्रपाठ का परिहास किया है। बुद्ध काल में देवताओं से बढ़कर महत्वपूर्ण हो गया था। वेदमंत्रों में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि आचार्य परम्परानुसार ब्राह्मणों के कई वर्ग बन गये थे। जैसे ऐतरेय, तैत्तिरीय, छांदोग्य अदांव⁶⁸ आदि इन विवरणों से प्रतीत होता है, कि ब्राह्मण वर्ग का एक समुदाय निष्ठापूर्वक वैदिक धार्मिक परम्परा का आचरण कर रहा था। वैदिक धर्मानुयायी पूजा अर्चना करते थे, इन्द्र सोम, वरुण⁶⁹, ईशान, प्रजापति, ब्रह्मा, महेन्द्र, यम आदि देवताओं की। इनमें ईशान को छोड़कर शेष सभी देवताओं का उल्लेख वेदों में है। ईशान का उल्लेख गृह्य सूत्रों में मिलता है जो पालि निकाय के समकालीन है।

पालि-पिटक तथा पाणिनि के अष्टाध्यायी में उपलब्ध प्रमाणों से तत्कालीन समाज में भक्ति संप्रदाय की विद्यमानता का पता चलता है। पालि पिटक में दव्धम्मिक तथा देववतिक शब्दों का प्रयोग उन लोगों के लिये किया गया है जो तापस न होकर भक्तिपूर्वक देवपूजन करते थे।⁷⁰ पाणिनि के अष्टाध्यायी में वासुदेव कृष्ण के भक्तों को वासुदेवक कहा गया है।⁷¹

ब्रह्मा – वैदिक युग के आराध्य देवों में ब्रह्मा का भी उल्लेख मिलता है। बुद्धकाल में इनकी पूजा बन्द नहीं हुई। बौद्ध लेखक ब्रह्म पूजा का विरोध नहीं करते हैं, बल्कि वे तो ब्रह्मा को देवताओं में सर्वोपरि मानते हैं। जब भगवान बुद्ध को सम्बोधि की प्राप्ति हो गयी तो स्वयं ब्रह्मा सहपति ने धर्मोपदेश के लिये उनसे निवेदन किया जिससे धर्मोपदेश में उनकी रुचि हुई।⁷² बुद्धकाल में एकाधिक ब्रह्मा स्वरूपों की कल्पना की गयी जैसे—सनत कुमार प्रजापति तथा सहपति।⁷³

इन्द्र – पालि-निकाय से ज्ञात होता है कि देवराज इन्द्र सर्वाधिक लोकप्रिय देवता थे, इनकी पूजा करने वालों की संख्या समाज में सबसे अधिक थी और ब्राह्मण

धर्मावलम्बियों के समान बौद्ध भी इनको देवराज ही मानते थे। वे इनका उल्लेख विभिन्न नामों से करते हैं, जैसे शक्र, वासव, माधवा आदि।⁷⁴ बौद्ध जातकों में इन्द्र के कार्य और निवास स्थान का विस्तार से वर्णन उपलब्ध है। इन्द्र के प्रमुख कार्य हैं – दुष्टों को दण्ड देना और दुखियों की सहायता करना जब कोई व्यक्ति कष्ट में पड़ता है तो उसका सिंहासन उष्ण होने लगता है।⁷⁵

पुण्यात्माओं के दुख निवारण हेतु तथा कुकर्मियों को दण्ड देने के लिए स्वर्ग से उतरकर पृथ्वी पर आ जाते हैं⁷⁶ इन्द्र सर्वदर्शी (समन्तचक्षु) है, उनके हजारों आँख हैं⁷⁷ किन्तु इनके प्रमुख देवता होने पर भी उनका पद निरापद है।

मानव अपने अनन्तपुण्य के प्रभाव से शक्र को अपदस्थ कर स्वयं उस पद का अधिकारी बन सकता है, अतः देवराज भयभीत रहते हैं कि कोई व्यक्ति इतना पुण्य अर्जित न कर लें कि उनका शक्रत्व न छिन जाय ⁷⁸, अतएव जब कोई मानव अतिशय पुण्य कर्म का आचरण करने लगता है⁷⁹ तब ऐसा प्रयास करते हैं जिससे उस व्यक्ति का पुण्य क्षीण हो जाय और उसका शक्रपद सुरक्षित रहे। देवराज इन्द्र त्रयोविंश देवलोक में निर्मित एक अति सुन्दर प्रासाद में रहते हैं। उस प्रासाद के नाम हैं – सुधर्मा, वैजयन्त तथा मस्सकसार।⁸⁰ सुधर्मा प्रासाद ही देवों का सभा भवन है।⁸¹ देवराज के विहार के लिये देवलोक में चित्रलता, नन्दन फारूसक तथा मिस्सक नाम के अति सुन्दर पुरुषोपधान बने हैं। उनके दो स्थायी सहयोगी हैं 'मातलि' तथा पंचशिख⁸² मातलि उनके सारथी हैं और पंचशिख गंधर्व हैं। देवराज के रथ का नाम वैजयन्त है।⁸³ इस प्रकार हम देखते हैं कि पालि निकाय में देवराज इन्द्र का विस्तृत विवरण दिया गया है। इससे यह सुस्पष्ट होता है कि देवराज 'जनता' के देवता थे। अतः बौद्ध धर्म में उनका वही स्थान है जो ब्राह्मण धर्म में था। यज्ञ प्रधान वैदिक धर्म में अग्निदेव का बड़ा महत्व है वे इस भूतल पर देवताओं के अगुआ हैं, जिसके माध्यम से देवगण मनुष्यों द्वारा प्रदत्त बलि ग्रहण करते हैं, द्विजातियों के दैनिक धार्मिक अनुष्ठानों में अग्नि देव की प्रमुखता है, गृह्य सूत्रों तथा धर्म सूत्रों, गृहस्थों के लिए अनेक गृह यज्ञों का विधान है, जिनमें अग्नि पूजन अनिवार्य होता है। ब्राह्मण गृहस्थ के घर में लगातार गृहाग्नि प्रज्वलित रखी जाती थी। गोभिल

गृह सूत्र (2/4/5) में अग्न्यगार का उल्लेख है। जिसके बाहर या अन्दर बलि दी जाती थी। बौद्ध लेखक भी यह स्वीकार करते हैं कि ब्राह्मण अग्निपूजक थे, तपोवन वासी ब्राह्मण पवित्र अग्नि की परिचर्या में लीन रहा करते थे।⁸⁴ सुंदरिक भारद्वाज तथा जटिल वधुओं के आश्रमों में अग्नि होत्र की अग्नि प्रज्ज्वलित रहती थी।⁸⁵ यद्यपि बौद्धों ने अग्नि परिचर्या का उपहास किया पर उन्हीं के विवरण से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में द्विजातियों के धार्मिक जीवन में अग्निदेव की पूजा का बड़ा महत्व था। बौद्ध पशुयज्ञ विरोधी थे और यज्ञ में अग्नि की प्रधानता रहती है, अतएव उन्होंने अग्नि पूजा का विरोध किया।

सूर्य— सूर्य का स्थान वैदिक देवताओं में महत्वपूर्ण है। वेदों में उनके पांच रूप माने गये हैं। किन्तु चन्द्रमा को महत्व नहीं दिया गया है। बौद्ध साहित्य में चन्द्रमा तथा सूर्य दोनों की पूजा के उल्लेख मिलते हैं।⁸⁶ लोग अन्य इष्ट देवों के साथ चन्द्रमा की उपासना भी अपनी इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति के लिये करते थे। सूर्य के समान पर्जन्य भी प्रसिद्ध देवता बने रहे। उन्हें वर्षा का देवता माना गया है अतः उनका आह्वान वर्षा के लिये किया जाता था।⁸⁷

लक्ष्मी — श्री (सिरि, सिरिमा) अर्थात् लक्ष्मी की पूजा भी सभी वर्ग के लोग करते थे। पालि-जातकों में इन्हें धृतराष्ट्र की पुत्री ऐश्वर्य एवं भाग्य की अधिष्ठात्री देवी कहा गया⁸⁸ है। जातकों की कल्पना के अनुसार इनके वस्त्र अनुलेपन तथा अलंकार स्वर्णवर्ण में रहते थे।⁸⁹ भरहुत तोरण में 'श्री' को कमलासन पर उत्कीर्ण किया गया है। मणिमेखला की समुद्राधिदेवी मान कर पूजा की जाती थी।⁹⁰ लोगों का विश्वास था कि नौकाभंग हो जाने पर नाविकों तथा यात्रियों का उद्धार करती थी।⁹¹ अतः इस देवी के प्रमुख उपासक थे, समुद्र यात्री तथा सामुद्रिक नाविक।

श्रद्धा, आशा ओर हिरि सदृश अन्य देवी देवताओं की भी पूजा की जाती थी।⁹² श्रद्धा का उल्लेख तो वेदों में भी है। पर आशा और हिरि का केवल पालि वाङ्मय में प्रथम उल्लेख मिलता है।

चार लोक पालों का उल्लेख मिलता है और इन्हें चार्तुमह राजिकदेव की संज्ञा दी गयी है⁹³, भरहुत वेदिकाओं के जातक। चित्रण में भी इनकों उत्कीर्ण किया गया है। चारो दिशाओं की रक्षा का भार देवताओं पर है। धृतराष्ट्र महाराज विरुल्हक महाराज, विरुपाक्ष महाराज, वैश्रवण महाराज, ये क्रमशः पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर के लोकपाल हैं। उपरोक्त प्रमुख देवों के अतिरिक्त अनेक सामान्य देवों की पूजा की जाती थी, जिनके विषय में पर्याप्त जानकारी का अभाव है। यक्ष, नाग तथा वृक्ष की पूजा का भी उल्लेख मिलता है। इनके संबंध में पालिनिकाय में सविस्तार विवरण उपलब्ध है। कहीं कहीं वृषभ पूजा का भी उल्लेख मिलता है। जातकों में स्वर्ग और नरक के भी रोचक वर्णन किये हैं। तत्कालीन जन साधारण की आस्था के अनुसार पुण्यकर्मी स्वर्ग में अधिकारी थे और जो पापकर्मी में लिप्त रहते थे वे नरक के।

यक्ष पूजा :

आज भी इस बात का सही पता नहीं है कि भारत में यक्ष पूजा का आरम्भ कब हुआ किन्तु ऋग्वेद, अथर्ववेद ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में यक्षों का उल्लेख मिलता है।⁹⁴ वैदिक संस्कृति में यक्ष का अर्थ है कोई अलौकिक अथवा प्रेतसमप्राणी।⁹⁵ कहीं-कहीं इसका प्रयोग मृत व्यक्ति की आत्मा के लिए किया गया है।⁹⁶ कुबेर के अनुचरों को भी यक्ष की संज्ञा दी गयी है।⁹⁷ पालि त्रिपिटक में मानवेतर प्राणी प्रेतात्मा राक्षस, पिशाच आदि के लिये यक्ष शब्द का उल्लेख मिलता है।⁹⁸ कहीं कहीं यह कहा गया है कि जिनकी पूजा की जाय, जिनके लिए बलि दी जाय वे ही यक्ष हैं।⁹⁹ कभी यक्ष को देवता कहा गया तो कभी देव पुत्र।¹⁰⁰ उनके कार्य कलाप भी विविध प्रकार के बतलाये गये हैं। यक्ष स्वभावतः दयालु होते हैं और उनसे प्राणियों का कल्याण होता है। वे प्राणियों को कुकर्म से विरत करते हैं।¹⁰¹ वे यमपुरी में मार्ग प्रदर्शक का कार्य करते हैं।¹⁰² कतिपय यक्षों का भयानक वर्णन भी मिलता है। एक यक्ष ने अम्बष्ठ से कहा — मैं तुम्हें जान से मार डालूँगा।¹⁰³ एक अन्य यक्ष ने सारिपुत्र की हत्या करने का विचार किया था।¹⁰⁴ यक्षों की तुलना में यक्षिणियों के अधिक भयावह वर्णन मिलते हैं। वे प्रायः यात्री को अपने माया जाल में फंसाकर मार डालती थी।¹⁰⁵ जातक कथाओं में यक्ष नगरों के उल्लेख मिलते हैं।

जो प्रायः द्वीप घनघोर वन तथा मरुस्थल में बसे होते थे। सिरिवत्थु नामक यक्षनगर ताम्रपर्णी द्वीप में था।¹⁰⁶ एक यक्ष नगर जंगल में था।¹⁰⁷ कई यक्ष इन नगरों में न रहकर अपनी एकांत भवनों में वास करना पसंद करते थे।¹⁰⁸

बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों तथा धर्मशास्त्र से यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन समाज में लोग यक्षों की श्रद्धापूर्वक पूजा अर्चना किया करते थे। स्थान-स्थान पर पूजास्थान बने हुये थे, जिनको यक्ष भवन अथवा यक्ष चैत्य कहा जाता था।¹⁰⁹ यक्ष भवन अथवा यक्ष चैत्य में यक्ष की मूर्ति प्रतिष्ठित की जाती थी या किसी अन्य विधि से उनकी पूजा की जाती थी, इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। इन पूजा स्थानों में लोग अनेक प्रकार के खाद्य और पेय लेकर जाते और मृग शूकर और मछली, सुरा आदि की भेट यक्षों को चढ़ाते थे।¹¹⁰ यक्ष पूजन के लिए समय समय पर पर्व भी मनाये जाते थे।¹¹¹

बौद्ध पिटक में सूचिलोम खर, इन्द्रकूट, मणिमाल, अजकलापक प्रभृति¹¹² तीस से भी अधिक यक्षों का नामोल्लेख किया गया है। सुचिलोम यक्ष का स्थान गया के निकट था, भरहुत वेदिका के एक वृहत शिलाफलक में इस यक्ष की मानवाकृति मूर्ति बनायी गयी है। जिसमें इसमें उष्णीष धारण कर रखा है। संयुक्त निकाय तथा सुत-निपात¹¹³ में इसे भगवान बुद्ध के साथ संभाषणरत दिखलाया गया है, पुनः खर तथा सूचिलोम यक्ष के वार्तालाप का भी विवरण मिलता है।¹¹⁴ संभवतः गयावासी सुचिलोम के साथ खर की भी पूजा करते थे। इन्द्रकूट नामक यक्ष का स्थान राजगृह के इन्द्रकूट पर्वत पर था।¹¹⁵ मणिमाल चैत्य मणिमाल यक्ष का आवास माना जाता था।¹¹⁶ पाटलिपुत्र के अजकलापक चैत्य में अजकलापक यक्ष की पूजा होती थी।¹¹⁷ उदान अट्ठकथा में उस यक्ष का बड़ा ही भयानक विवरण दिया गया है।

नागपूजा – वैदिक समाज में नागपूजा का प्रचलन नहीं था नाग देवता आर्येत्तर जातियों में पूजित थे। अवान्तर काल में जब आर्येत्तर जातियों में आर्य समाज में विलीन हो गयी और उनके उपास्यदेव भी आर्य देवों की श्रेणी में आ गये तो नाग पूजा को भी आर्य समाज में अपना लिया। नाग आर्यों के आद्य देवों में नहीं थे, इनके पर्याप्त प्रमाण

उपलब्ध हैं। ऋग्वेद में भी आर्य देवताओं तथा नागों की शत्रुता का उल्लेख हुआ है। इन्द्र ने भी वृत्र तथा अहि नाग का दर्प मदन किया।¹¹⁸ महाभारत युग में अर्जुन ने भी नागों की आवास भूमि खांडववन भस्मी भूत कर दिया। जनमेजय ने नागयज्ञ का अनुष्ठान करके सर्पों का विनाश किया। पुनः महाभारत से विदित होता है कि राजगृह में नाग मंदिर थे¹¹⁹, जब कृष्ण और अर्जुन राजगृह पधारे तो उन्होंने मणि नाग की पूजा की। इस प्रकार के विवरण हमें बतलाते हैं कि नाग मूलतः आर्य देवता नहीं थे। अनार्य जरासंध द्वारा शासित मगध में नाग पूजा का प्रमुख केन्द्र होने से भी इस बात की पुष्टि होती है। मगध में आर्य संस्कृति का प्रभुत्व संभवतः पूर्वी भारत में अन्य स्थानों की अपेक्षा देर से होने के कारण यह महाभारत युग में नाग पूजा का गढ़ बन गया और पांचवी शताब्दी ई0 सन तक बना रहा।

आर्येतर जातियों में नाग पूजा का प्रचलन क्यों हुआ ? प्रश्न उठना स्वभाविक है। इस प्रश्न का समीचीन उत्तर होगा सर्प दंश का भय। इस भय के निवारणार्थ ही नाग पूजा का श्री गणेश हुआ होगा। इस संभावना का उल्लेख विनय पिटक में भी मिलता है। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा है भिक्षुओं ,आप लोग नागों के राज कुलों की पूजा करें, इससे आप उनके दंश से मुक्त रह सकेंगे। भिक्षुओं को खुले पैर जंगली रास्तों में चलना पड़ता था। जिससे वे प्रायः सर्पदंश के शिकार हो जाते होंगे। अतः बुद्ध ने नाग पूजा का आदेश दिया। भारतीय ग्रामीण जनता में अभी तक यह विश्वास दृढ़ है कि सर्पदंश से मुक्ति के लिये नाग पूजा करनी चाहिये यदि किसी व्यक्ति को सांप डंस देता तो उसके परिवार के सदस्य मनौती मानते हैं है कि यदि वह व्यक्ति बच जायेगा तो भविष्य में विधिपूर्वक नाग पूजा की जायेगी। यदि सर्पदंश के कारण किसी की मृत्यु हो जाती है तो इस भय से भी भविष्य में पुनः किसी सदस्य को सांप न डंस ले लोग नाग पूजा करने लगते हैं। अतः सर्पदंश के भय से नाग पूजा के उदय की संभावना स्वभाविक प्रतीत होती है। यह भय जितना आर्येतर जातियों में व्याप्त था। उतना ही आर्यों में आज भी नाग पूजा की प्रथा का जन्म समाज में हुआ और अवान्तर काल में आर्यों ने इसे अपनाया इस बात की संभावना प्रतीत होती है कि आर्येतर जातियों में नाग जाति के इष्ट देवता

नागदेव थे जैसा ऊपर कहा गया है कि महाभारत काल में मगध नाग पूजा का प्रमुख केन्द्र था। महाभारत के समान जैन ग्रन्थ भी राजगृह नाग पूजा का केन्द्र बतलाते हैं। राज गृह में आज भी मणिनाग के मंदिर का अवशेष खड़ा है।

बौद्ध जातकों में नाग पूजा के अनेक वर्णन मिलते हैं¹²⁰, जिनसे बुद्धकालीन समाज में नाग पूजा की व्यापकता में संदेह नहीं रह जाता है। हिन्दू समाज में नाग पूजा आज भी उतना ही व्यापक है, जितना प्राचीन काल में और श्रावण शुक्ला पंचमी को सर्वत्र नाग पंचमी का पर्व श्रद्धा पूर्वक मनाया जाता है। उस दिन लोग नागदेवता को दुग्ध के साथ धान का लावा भी खिलाते हैं। गृह्य सत्रों के अनुसार नाग देवता को लावा, भूजे यव का आटा तथा दुग्ध मिश्रित आटे की बलि देनी चाहिये उसके बाद जल का अर्घ्य देना चाहिये और फूल एवं सूत को चढ़ाये जाने चाहिये।¹²¹ बौद्ध जातकों में दुग्ध, खीर, मछली, मांस, सुरा आदि द्वारा नाग बलि संपन्न किये जाने के उल्लेख मिलते हैं।¹²²

महाभारत में नाग मंदिर तथा नाग चैत्य के उल्लेख मिलते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में फणयुक्त नाग मूर्तियों का उल्लेख किया गया। संभवतः मृण्मयी नाग मूर्तियों की उपासना की जाती होगी। बौद्ध काल में नागों को इतना अधिक महत्व प्रदान किया गया है कि पूजार्थ नाग मूर्तियों के निर्माण की संभावना स्वभाविक प्रतीत होती है।

वृक्ष पूजा – वृक्ष पूजा की प्रथा भी अति प्राचीन है। किन्तु नाग पूजा के समान इसका भी उद्भव आर्येतर समाज में हुआ जान पड़ता है। ऋग्वेद में आख्यानों की पूजा का उल्लेख मिलता है। आख्यान का अर्थ होता है 'वन की आत्मा' और इससे किसी वृक्ष विशेष की पूजा का संकेत नहीं मिलता है। ऋग्वेद में अश्वत्थ अथवा पीपल वृक्ष के भी उल्लेख किये गये हैं, पर उनकी पूजा का नहीं। यदि वैदिक साहित्य में वृक्ष पूजा का कहीं उल्लेख होता भी है तो वो अथर्ववेद¹²³ ब्राह्मण¹²⁴ तथा उपनिषद¹²⁵ में।

अथर्ववेद में अनेक आर्येतर रीति रिवाजों को स्वीकार किया गया था, क्योंकि यह उस काल की रचना है जब वैदिक धर्म में अनेक आर्येतर आराध्य देवों को स्थान मिला

था। इसी क्रम में वृक्ष पूजा को मान्यता दिया गया था। अतः अथर्ववेद में अनेक वृक्षों के प्रति पवित्रता के भाव व्यक्त किये गये हैं।

वृक्ष पूजा आर्येतर जातियों की देन है, इसका सबसे प्रबल प्रमाण हड़प्पाकालीन सभ्यता में पीपल वृक्ष की पूजा का प्रचलन है। सिन्धुवासी दो तरह के वृक्ष की उपासना करते थे एक तो स्वभाविक रूप से दूसरा, वृक्ष से आविर्भूयमान देवता के रूप में।¹²⁶ आज भी विश्व के कुछ आर्येतर वंशजों में वृक्ष पूजा विद्यमान है। हर्टन महोदय के मत में भारत तथा दक्षिण पूर्व एशिया को सर्वप्रथम आबाद करने वाली नेग्रिटो आदिम जाति वृक्ष को पूजनीय मानती थी और उन्हीं से यह प्रथा आर्य समाज में आयी।¹²⁷ अंडमान निकोबार द्वीप समूह के आदिम जातियों में वृक्ष पूजा प्रचलित है और उनमें तथा दक्षिण पूर्व एशिया की आदिम जातियों के बीच खून के संबंध प्रमाणित हैं।

बौद्ध पालि ग्रन्थों से जानकारी प्राप्त होती है कि उस समय के समाज में वृक्ष पूजा विशाल और व्यापक रूप में थी। वृक्षों को देवता, अप्सरा, नाग, प्रेतात्मा का वास स्थान मानकर लोग पुत्र, यश, धन आदि की अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये वृक्षों की पूजा करते थे।¹²⁸ कतिपय लोग वृक्षवासी प्रेतात्माओं तथा नागों के भय के निवारण के हेतु वृक्ष पूजा करते। वस्तुतः वृक्ष पूजन नहीं होता था, पूजा तो की जाती थी पूजित वृक्ष में वास करने वाले सुर देवता अथवा प्रेतात्माओं की।

भारतीय लोगों का वर्तमान में भी यह विश्वास दृढ़ है और वह कई वृक्षों को भूत प्रेत आदि का स्थान मानती है इसी आधार पर कई वृक्षों को देव स्वरूप माना जाता है। पीपल जब इसको दार्शनिक आधार प्रदान किया गया तो समस्त प्रकृति परमेश्वर की अभिव्यक्ति स्वीकार की गयी, किन्तु जनता के विश्वास का आधार तो अपने मूल में ही बना रहा।

वृषभ पूजा — वृषभ पूजा का प्रचलन कृषि प्रधान देश में सर्वथा स्वभाविक रूप में है, यों तो वृषभ की पूजा की महत्ता हड़प्पा कालीन समाज में ही स्वीकार की गयी किन्तु उस समय उसकी उपासना होती थी, यह प्रमाणित रूप से नहीं कहा जा सकता।

भगवान शंकर का वाहन होने के कारण हिन्दू धर्म में वृक्ष के अतिरिक्त वृषभ को पूज्य माना जाता है। बौद्ध ग्रन्थों में भी वृषभ को श्रद्धास्पद बतलाया गया है, कहीं-कहीं अवसर विशेष पर वृषभ के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के वर्णन भी मिलते हैं। पंचुपोसथ-जातक (490) में इस सम्बन्ध की कहानी में यह उल्लेख मिलता है कि – “मगध राज्य के प्रत्यन्त ग्राम के मुखिया के एक वृषभ का सर्पदंश के कारण मृत्यु हो गयी। इसकी सूचना मिलते ही ग्रामवासी जहाँ वृषभ मरा पड़ा था, वहाँ रोते हुए दौड़ आए, उन्होंने पुष्प मालाओं से सजाकर दफनाया।” इस प्रसंग में शिव तथा वृषभ के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया गया है। शिव के वाहन के रूप में वृषभ का सचित्र वर्णन सर्वप्रथम कुषाण शासक की मुद्राओं में मिलता है। अतः बुद्ध के समय में शिव के वाहन के रूप में वृषभ पूजा का प्रथा का विद्यमानता संदिग्ध प्रतीत होती है। कृषिकर्म के लिए वृषभ पर निर्भरता के कारण कृषक वर्ग में उसके प्रति भक्ति भावना का अभिव्यक्ति की आकांक्षा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता। कृषक हिन्दू समाज गो तथा वृषभ के प्रति सदा ही अत्यन्त श्रद्धालु रहा है। वर्तमान में भी पूर्वी भारत में दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी पूजा के साथ गो वृषभ की पूजा की जाती है। महाराष्ट्र में आषाढ़ पूर्णिमा के दिन वृषभ पूजा करने की प्रथा व्याप्त है। वस्तुतः गो वृषभ पूजा के, मूल में भावना निहित है, कि कृषि कर्म में उनके सहयोग से ही पारिवारिक संपत्ति में वृद्धि संभव है। अतः यह निर्णय सही होगा कि वृषभ पूजा की मान्यता के दो प्रमुख कारण हैं – प्रथम रूप में कृषि में उसका सहयोग एवं दूसरा उसे भगवान शंकर का वाहन मानना। जातक कथाओं में बुद्धयुगीन समाज के जन समुदाय द्वारा प्रतिपादित धर्म के मूल तत्वों का ज्ञान भी उपलब्ध होता है। जातकों में इनके उल्लेख कुरु धर्म तथा दश-राजधर्म के नाम से मिलते हैं। इनके अन्तर्गत अविहिंसा, अक्रोध, सत्य, ज्ञान, दान, परवस्तु के बिना दिये ग्रहण नहीं करना, मार्दव, आर्जव, मातृ पितृ-सुश्रूषा, शील, मिथ्याचार, विरति, आत्मदमन, धृति तप, परित्याग, मद्यपान तथा शौच के आचरण को धर्म की संज्ञा दी गयी है।¹²⁹ धर्म के इन अंगों पर विचार करने से यह प्रकट होता है कि इनमें अधिकांश का ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन मतों में समान रूपेण प्रतिपालन होता है। मनु ने दश धर्म (धृति, क्षमा, दान, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अक्रोध) के आचरण का

विधान किया है। जैन मत के पंच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, सुनृत तथा अपरिग्रह और बौद्ध मत के दशशील वस्तुतः ब्राह्मण सन्यासियों द्वारा मान्य आचार संहिता से ग्रहण किये गये, अतः तीनों में इतना साम्य दृष्टिगोचर होता है, यह भी ध्यान देने की बात है कि सम्राट अशोक ने भी सभी धर्मानुयायियों के लिये जिस समान धर्म की नियमावली को अपने धर्म लेखों में उत्कीर्ण करवाया वह जातकों में उपलब्ध धर्म के नियमों से मिलता जुलता है। इससे यह प्रतीत होता है कि पहले बौद्ध लेखकों ने जिस लोक धर्म को अपनी लोक कथाओं में संयोजन किया उसे फिर से अशोक ने अपने अभिलेखों में धम्म नाम से प्रतिष्ठित किया। अशोक की अभिरुचि सभी धर्मावलम्बियों में बौद्ध मत के उस सर्वाग्राह्य आचार का प्रचार करने में थी, जिनकी जन समुदायों में युगों से प्रतिष्ठा थी। अशोक के धर्म में अपासिनव, बहुकल्याण, दया, दान, सत्य, शौच मार्दव, साधुता, अविहिंसा, मातृ-पितृ सुश्रूषा, गुरु सेवा और ज्ञातृकों, ब्राह्मणों, श्रमणों आदि के प्रति सदव्यवहार प्रमुख हैं। अविहिंसा, दया, सत्य दानशीलता, शौच मार्दव तथा मातृ-पितृ सुश्रूषा के जातकों में तथा अशोक के धर्म में समान महत्व मिला है। धर्म के शेष अंगों में भी न्यूनाधिक समानता मौजूद है। अशोक ने धार्मिक सहनशीलता को महत्वपूर्ण माना तो जातकों के अविरोध की महत्ता बतलायी गयी। मिथ्याचार का विरोध दोनों ने किया। अशोक ने धर्म की प्रतिष्ठा स्थापित करने के मूल में मानव मात्र के हेतु लौकिक तथा पारलौकिक सुख शान्ति को प्रमुख माना था।¹³⁰ उनका परमलक्ष्य तो पारलौकिक ही था जो जीवन के प्रति सनातन धर्म के दृष्टिकोण से भिन्न नहीं माना जा सकता। मानव के सभी धर्माचरण वस्तुतः मोक्ष प्राप्ति के लिये सम्पन्न किये जाते थे। अशोक ने कहा 'यं चु किंचिं परिक्रामते देवांप्रियो प्रियदर्शी राजा त सवं पारत्रिकायं धम्मजातक'¹³¹ (497) के अनुसार धर्मानुष्ठान का उद्देश्य स्वर्ग लोक की उपलब्धि है और इस लक्ष्य के पूर्ति के साधन है – अप्राणिहिंसा, मिथ्याचार, विरति, मातृ-पितृ, सुश्रूषा तथा सदाचार पालन। स्वर्ग तथा मोक्ष के मार्ग में बाधक होने के कारण क्रोध, ईर्ष्या, तृष्णा तथा विषयासक्ति का त्याग वांछित माना गया।¹³² अशोक ने भी चाण्ड्य, नैष्ठ्य, क्रोध, मान तथा ईर्ष्या के त्याग का उपदेश दिया।¹³³ अतः इन समानताओं से यह प्रकट होता है कि अशोक के अभिलेखों में धर्म के जिस स्वरूप का हमें ज्ञान होता है वह पालि पिटक में वर्णित लोक धर्म पर

आधारित है। अतः बुद्धकालीन लोकधर्म के सांगोपांग ज्ञान के लिये अशोक के धर्म लेखों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जातकों में पर वस्तु के उपभोग तथा पर स्त्री पर सकाम दृष्टिपात करने की निषेधाज्ञा मिलती है।¹³⁴ सदाचारी उस व्यक्ति को कहा गया है जो चौर वृत्ति से हमेशा अलग रहता है। जो हमेशा सत्य वचन बोलता है, जो धन अर्जन करने हेतु केवल सत्य मार्ग का अवलम्बन करता है – कपटपूर्वक अर्जित धन के उपभोग से अलग रहा है, जो अमर्यादित आन्दोपभोग से अलग रहता है जो सदुद्देश्य से कभी भी विचलित नहीं होता और जो पूर्ण निष्ठावान है तथा जैसा बोलता है वैसा ही आचरण भी करता है।¹³⁵ अन्यत्र इस विचार की भी अभिव्यक्ति मिलती है कि घृणा से घृणा का अंत करना संभव नहीं, एकमात्र प्रेम द्वारा घृणा को जीता जा सकता है तथा जो प्रभुता प्रचंड साधनों द्वारा प्राप्त की जाती है¹³⁶, वह चिरस्थायी नहीं हो सकती।

आज भी बौद्ध पिटक में अनेक सदाचार के उल्लेख हैं, किन्तु माता-पिता-सुश्रुषा गुरुजन सत्कार तथा दानशीलता के विशेष विस्तार के साथ विवरण उपलब्ध होते हैं। ये सदाचार अति प्राचीन हैं और सभी भारतीय धर्म संप्रदायों ने इनके महत्व को अंगीकार किया है। भगवान बुद्ध ने बौद्ध उपासकों तथा भिक्षुओं को उपदेश दिया कि माता-पिता अपनी संतान का बड़ा उपकार करते हैं – वे उनका पालन-पोषण करते हैं तथा उन्हें इस विश्व से परिचित कराते हैं।¹³⁷ उन्होंने यहाँ तक कहा कि जिन कुलों में माता पिता की पूजा होती है वे ब्रह्मलोक के समान हैं, क्योंकि माता पिता साक्षात् प्रजापति हैं।¹³⁸ वेदों में माता-पिता की तुलना द्यावा पृथ्वी से की गयी है। प्राचीन भारतीय समाज में माता-पिता अर्थात् अपने जन्मदाता की पूजा स्रष्टा की भाँति की जाती थी। अतः इनके महत्व का सर्वत्र उल्लेख मिलता है। बौद्धों ने तो मातृ-पितृ पूजा को स्वर्ग प्रदान करने में भी समर्थ कहा है।¹³⁹ उन्होंने यह माना कि माता पिता अपनी संतान के लिये मानवरूप में देवता हैं। अतः अंगुत्तर निकाय इति वृत्तक में कहा गया है कि संतान अपने माता-पिता की पूजा उन्हें मधु, भोजन, पेय, वस्त्र एवं शय्या प्रदान करके उनको स्नान कराकर तथा उनका शरीरावलेपन करके और उनके चरण धोकर संपन्न करे।¹⁴⁰ एक जातक में तो यहां

तक कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति अपने माता-पिता की समुचित सेवा करेगा और गुरुजनों के प्रति श्रद्धालु रहेगा तो उसे अवश्यमेव त्रयोत्रिंश देवलोक में स्थान मिलेगा।¹⁴¹ गुरुजन सेवा के महत्व को भिक्षुसंघ में भी स्वीकार किया गया था और इस कारण वरिष्ठ भिक्षुओं को अनेक सुविधायें उपलब्ध हुई थीं।

गुरुजन सेवा के समान दानशीलता को भी बुद्धकालीन समाज में धर्म का प्रमुख अंग माना गया था। अनेक जातकों में दानशीलता की महत्ता के गान मिलते हैं। वस्तुतः अति प्राचीन काल से दान को धर्म का महत्वपूर्ण अंग माना गया है और जातकों में वर्णन मिलते हैं कि ऐसा सुनने को कभी नहीं मिला कि किसी सद्गृहस्थ के द्वार से कोई भिक्षु या श्रमण ब्राह्मण तापस खाली हाथ लौट गया हो।¹⁴² दानशीलता की महत्ता के पुनः उल्लेख मिलते हैं और लोक कथाओं में दान के साथ महादान के भी वर्णन किये गये हैं। अंगुत्तर निकाय तथा सुत निपात में गृहस्थों द्वारा संपन्न किये गये महादानों में प्रभूत दान दिये जाने के उल्लेख आते हैं। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि दाता ने अपना सर्वस्वदान में दे दिया। इस प्रकार का दान महादान की श्रेणी में आयेगा। समाज में ऐसे धनाढ्य श्रेष्ठि मौजूद थे जो रोजाना हजारों भिखारियों को भोजन कराते थे¹⁴³, कितने दानी दानशालाएं चलाते थे, जहां निर्धनों को दान दिया जाता था। श्रमणों ब्राह्मणों, तापसों, भिखारियों तथा निर्धनों को दान में भोजन, वस्त्र दिये जाने के उल्लेख मिलते हैं।¹⁴⁴ पालि-पिटक में कहा गया है कि दानशीलता सर्वोत्तम धर्माचरण हैं, क्योंकि इसके पुण्य-प्रताप से दानी मरणोपरान्त स्वर्ग में स्थान पाता है।¹⁴⁵ दानी पुरुष ब्रह्मलोक, शक्रलोक तथा नागलोक में जन्म पाता है। ऐसा लोगों का दृढ़ विश्वास हो गया था। अरक जातक (169) में इस बात का उल्लेख मिलता है कि यदि कोई व्यक्ति सात वर्षों तक लगातार दान देता रहेगा तो वह ब्रह्मलोक में जन्म पाकर वहाँ सात युगों तक वास करेगा। उरग जातक (354) के अनुसार देवराज शक्र इस कारण भयभीत रहा करते हैं, कि कहीं कोई महान दानी अपने पुण्य-प्रताप से देवलोक में जन्म लेकर उन्हें पदच्युत कर स्वयं देवराज पद पर आसीन हो जाय। दानशीलता के प्रताप से शुक्रपद प्राप्ति की कई कथाएं जातकों में मिलती हैं।¹⁴⁶ संखपाल जातक (524) के अनुसार एक राजा ने

अपनी दानशीलता के प्रताप से नागलोक में नागराज के रूप में शरीर पाया। इस तरह की कथाओं का उद्देश्य जनता को दानशीलता में प्रेरित करना था। इन कथाओं के मूल में यह उद्देश्य भी निहित प्रतीत होता है कि पशुयज्ञ से जिन पुण्य को प्राप्त करने की अपेक्षा की जाती है उसकी उपलब्धि दान द्वारा भी संभव है। उपनिषदों में पशुयज्ञ की निःसारता को संकेत मिलता है तथा बौद्ध युग में यह भावना अत्यन्त मुखर हो गयी।

जातकों में दान विधि के सम्बन्ध में कई रोचक बातों का पता चलता है। कई दानी तो अपनी दानशीलता प्रदर्शित करने के लिये दानशालाओं दान पतियों द्वारा अपने अपने नगरों में प्रायः 6-6 दानशालाओं के निर्माण की प्रथा प्रचलित थी – चार तो चारों नगर द्वारों में एक नगर मध्य में और एक दानी के आवास के निकट बनाया जाता था।¹⁴⁷ श्रमण तथा ब्राह्मण प्रायः भोजन वस्त्रयान उद्यान गंध, विलेपन आदि अनेक वस्तुओं को दान में प्राप्त करते थे¹⁴⁸, यज्ञ आदि अवसर विशेष पर तो ब्राह्मणों को प्रभूत दान मिलते थे। उन्हें स्वर्ण, रजन, अन्न, स्त्री, दास, गो, वृषभ, अश्वः हस्ति आदि अनेकों सामग्री दान में दी जाती थी।¹⁵⁹ इस प्रकार के दान महादान की श्रेणी में आते हैं, जिसका सामर्थ्य जनसाधारण में नहीं था। बड़े-बड़े श्रेष्ठि राजे-महाराजे ही महादान करने में सक्षम थे।

यह तो असंदिग्ध है कि बुद्धकाल में दान की बड़ी प्रतिष्ठा रही, किन्तु समाज में कंजूसों, का कभी अभाव नहीं रहा है। जातकों में भी कई ऐसे धन-कुबेरों के उल्लेख मिलते हैं जो दान के नाम से भड़कते थे। कुछ श्रेष्ठि दान तो करते थे, पर सड़े खाद्यान्न का ही। विलारिकोसिय-जातक (450)¹⁵⁰ में एक ऐसे कंजूस श्रेष्ठि की कथा मिलती है, जो ब्राह्मणों को निम्न कोटि के चावल दान किया करता था। एक दिन जनता में इसको लेकर बड़ा क्षोभ हो गया और जन समुदाय के समक्ष उस श्रेष्ठि को अपमानित होना पड़ा। कभी-कभी ऐसे कंजूसों का भी जन्म हो जाता था जो अपनी पैतृक दानशालाओं को बंद कर देते अथवा उन्हें ध्वस्त कर जला डालते।¹⁵¹ आज भी समाज में कतिपय कंजूस थे किन्तु सदगृहस्थ श्रमणों, ब्राह्मणों, तापसों, निर्धनों तथा अभावग्रस्तों को खुले हाथों से दान दिया करते थे।

ग. जैन देव परम्परा

धर्म तत्व रूप में मस्तिष्क की वैदिक मनोवृत्ति की अपेक्षा सरल ज्ञान और मनोवेग के ऊपर अधिक आधारित है। धर्म की सहायता से ही मानव ने किसी लगातार मौजूद कर्तव्य जिसे वह विश्व का नियामक समझता था, उसके अस्तित्व की कल्पना करके प्राकृतिक शक्तियों और संसार के तथ्यों को प्रतिपादन करने का प्रयास किया। इस प्रकार विश्व के नियामक समझे जाने वाले अनेक देवी देवता और प्राचीन पवित्र आत्माओं का प्रादुर्भाव हुआ।

देवी देवताओं का अस्तित्व भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है¹⁵² जैन सूत्रों में इन्द्र, स्कंद, रुद्र, मुकुंद, शिव वैश्रवण, नाग, यक्ष, भूत आर्या और कोट्टकिरया मह का उल्लेख किया गया है¹⁵³ इन्द्र को वैदिक साहित्य में अत्यन्त प्राचीन देवता माना गया है वह सभी देवताओं में अग्रणी था, इन्द्र को परस्त्रीगामी बताया गया है।¹⁵⁴

इन्द्र मह :

कल्प सूत्रों के अनुसार इन्द्र अपनी आठ पटरानियों, तीन परिषदों, सात सैन्यों, सात सेनापतियों और आत्मरक्षकों से परिवृत्त होकर स्वर्गिक सुख का उपभोग करता था। प्राचीन काल में इन्द्र सब उत्सवों में श्रेष्ठ माना जाता है और लोग इसे बड़ी धूमधाम से मनाते थे, ¹⁵⁵ निशीथ चूर्णी सूत्र में इन्द्र स्कंद, यक्ष और भूत नामक महामहों का उल्लेख है जो क्रम से आषाढ¹⁵⁶, आसोज, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमाओं के दिन मनाये जाते थे, जबकि लोग खूब खाते पीते, नाचते और गाते हुये आमोद प्रमोद करते थे।

कापिल्यपुर में इन्द्रमहोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। दुर्मुख राजा ने नागरिकों को इन्द्रकेतु खड़ा करने का आदेश दिया तत्पश्चात् मंगल वाद्यों के साथ श्वेत ध्वज पट और क्षुद्र घटिकाओं से सुशोभित, श्रेष्ठ मालाओं से सुशोभित, मणि रत्नमाला से विभूषित तथा अनेक प्रकार के लटकते हुये फलों से समन्वित इन्द्रकेतु स्थापित किया गया है। नर्तिकायें नृत्य करने लगी, कविगण काव्यपाठ करने लगे, लोग समूह आनन्द से नाचने लगे, ऐन्द्रजालिक दृष्टिमोहन आदि इन्द्रजाल दिखाने लगे। ताम्बूल बांटे गये, कुंकुम

और कर्पूर जल छिड़का जाने लगा महादान दिये जाने लगे और मृदंगों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। इस प्रकार आमोद प्रमोद में सात दिन व्यतीत हो गये। उसके बाद पूर्णिमा के दिन राजा दुर्मुख ने कुसुम और वस्त्र आदि द्वारा महावैभव से गाजे बाजे के साथ इन्द्रकेतु की पूजा की।¹⁵⁷

हेमपुर में भी इन्द्रमह मनाया जाता था। यहाँ इन्द्र स्थान के चारों ओर नगर की पाँच सौ कुल बालिकाएँ एकत्रित हो, अपने सौभाग्य के लिये बलि, पुष्प और धूप आदि से इन्द्र की पूजा उपासना करती।¹⁵⁸ पोलासपुर में यह उत्सव मनाया जाता था।¹⁵⁹

इन्द्रमह आदि के उत्सवों पर बहुत अधिक शोरगुल और गड़बड़ी रहने से जैन साधुओं को स्वाध्याय मनाही की गयी है। उत्सव के लिये तैयार किया हुआ जो मद्यपान आदि खाद्य पदार्थ बच जाता उसे लोग प्रतिपदा के दिन के उपयोग में लाते। उत्सव के दिनों में आमोद प्रमोद में उन्मत्त रहने के कारण उस दिन सगे सम्बन्धियों को निमंत्रित नहीं किया जा सकता उन्हें भी प्रतिपदा के दिन ही बुलाया जाता।¹⁶⁰ इन्द्रमह के दिन लोग धोबी के घर के धुले हुये साफ वस्त्र पहनते थे।¹⁶¹

स्कन्द मह :

ब्राह्मणों में पौराणिक कथा के आलोक में 'स्कंद' अथवा 'कार्तिकेय' ¹⁶² महादेव जी के पुत्र और युद्ध के देवता माने गये हैं तारक राक्षस और देवताओं के युद्ध में स्कन्द आसोज की पूर्णिमा को मनाया जाता तथा स्कंद सेनापति बने थे, जिनका वाहन मयूर था¹⁶³, भगवान महावीर के समय स्कंद पूजा प्रचलित थी। महावीर जब श्रावस्ती पहुंचे तो अलंकारों से विभूषित स्कंद प्रतिमा के रथ की सवारी निकाली जा रही थी।¹⁶⁴ स्कन्द और रुद्र की प्रतिमायें काष्ठ की बनायी जाती थीं।¹⁶⁵ कभी प्रदीपशाला में स्थापित की हुई स्कंद प्रतिमाओं के जल जाने का डर रहता था, कभी श्वान के द्वारा जलते हुए दीपक को हिला डुला देने से या चूहे द्वारा जलती हुई बत्ती निकालकर ले जाने से आग लग जाने की आशंका रहती थी। ऐसी हालत में जैन साधुओं के लिये वसति में ही रहने का विधान है, यदि शुद्ध वसति न मिले तो यातनापूर्वक प्रदीपशाला में रहे। यदि प्रतिमा के जल जाने की आशंका हो तो उसे वहाँ से सरकाकर कहीं और स्थापित कर दें। यदि यह

न हो तो स्तम्भ, कुड़च आदि पर लेप कर दें, जिससे गीला होने के कारण प्रतिमा जल नहीं सके अन्यथा दीपक को वहां से सरका दें। यदि कदाचित शृखंलाबद्ध दीप हो और उसे सरकाना संभव न हो तो दीपक की बत्ती को ऊपर नीचे करते रहना चाहिये। कुत्ते, गाय आदि को वहां से सिसकारी मारकर या दण्ड आदि दिखाकर भगा देना चाहिये या फिर बत्ती को कम कर देना चाहिये या उसे निचोड़कर उसका तेल निकाल लेना चाहिये।¹⁶⁶

रूद्र मह :

हिन्दू पुराणों में ग्यारह रूद्र माने गये हैं। वे इन्द्र के साथी शिव और उसके पुत्र अनुचर तथा यम के रक्षक बताये गये हैं।¹⁶⁷ रूद्रायतन का उल्लेख आडम्बर यक्ष (हरिमिक्ख अथवा हिरडिक्क) और चामुण्डा (मातृ) के आयतन के साथ किया गया है। इन आयतनों के नीचे मनुष्य की ताजी हड्डियाँ गाड़ी जाती थी।¹⁶⁸ स्कन्द की प्रतिमा की भोंति रूद्र की प्रतिमा भी काष्ठ से बनायी जाती थी।

मुकुन्द मह :

महाभारत में मुकुन्द अथवा बलदेव को लांगूली अथवा हलधर कहा गया है। हल उसका अस्त्र उसके गले में सर्पों की माला पड़ी हुई है और उसकी ध्वजा में तीन सिरों के निशान हैं। बलदेव की हस्तरेखा से उसका मद्यप्रेम व्यक्त होता है।¹⁶⁹ भगवान महावीर के काल में मुकुन्द और वासुदेव की पूजा प्रसिद्ध थी, महावीर जब गोशाल के साथ विहार करते हुये आक्त ग्राम पहुंचे तो वहाँ बलदेव गृह में हाथ में हल (नंगल लिये हुये बलदेव की प्रतिमा विराजमान थी) मछणा गांव में भी बलदेव की प्रतिमा मौजूद थी।¹⁷⁰

शिव मह :

हिन्दू पुराणों में शिव अथवा महाशिव भूतों के अधिपति, कामदेव, के दहनकर्ता और स्कन्द के पिता माने गये हैं। संसार को ध्वंस करने वाले विष का पान करना, दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर देना और आकाश से गिरती हुई गंगा को अपने जटा-जूट में धारण

करना – ये उनके मुख्य कार्य माने जाते हैं, पर्वत देवता के रूप में उनके सम्मान में वैशाख में उत्सव मनाया जाता था। शिव को उमापति भी कहा गया है।¹⁷¹ जैन परम्परा के अनुसार शिव अथवा महेश्वर चेटक की पुत्री सुज्येष्ठा के पुत्र थे। सुज्येष्ठा प्रवजित होकर किसी उपाश्रय में अतापना कर रही थी, इसी समय पेढाल नामक परिव्राजक विद्या देने के लिये किसी योग्य व्यक्ति की खोज में निकला।

उसने सोचा यदि किसी ब्रह्मचारिणी से पुत्रोत्पत्ति हो तो विद्या सुरक्षित रह सकती है। यह सोचकर पेढाल ने सुज्येष्ठा को धूमिक से व्यामोहित कर उसमें बीज प्रक्षिप्त कर दिया कालान्तर में उसे गर्भ से सात्यकी उत्पन्न हुआ। सात्यकी विद्याओं का पारगामी हो गया। महारोहिणी नाम की विद्या ने उसके मस्तक में छिद्र किया और वह उसके शरीर में प्रविष्ट हो गयी है। इसके बाद महेश्वर उज्जैनी की रूपवती गणिका उमा के साथ रहने लगा। एक बार जब महेश्वर उमा के साथ रमण कर रहा था प्रद्यौत ने अपने नौकर भेजकर उसकी हत्या करा दी। जब महेश्वर के मित्र नदीश्वर को इसका पता लगा तो वह विद्याओं से अधिष्ठित होकर एक शिला द्वारा नगरवासियों की हत्या हेतु आकाश में जा पहुँचा। यह देखकर राजा नगरवासियों को साथ ले, गीले वस्त्र पहन, नदीश्वर के पैर पकड़कर अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगा। इस समय से प्रत्येक नगर में शिवलिंग की पूजा आरम्भ हुई।¹⁷²

देवता ने इस छिद्र को तीसरी आँख में परिणत कर दिया। कुछ समय बाद सात्यकी ने अपने पिता पेढाल का बध इसलिए किया उसने राजकुमारी सुज्येष्ठा के सतीत्व को भ्रष्ट किया था।

अब सात्यकी विद्या चक्रवर्ती हो गयी। इन्द्र ने इसका नाम महेश्वर रखा। महेश्वर बाह्यणो से ईष्या करते थे। इसलिए उन्होंने ब्राह्मणों की सैकड़ों कन्याओं को भ्रष्ट कर डाली। वह राजा प्रद्यौत के निवास में भी उसकी रानियों के साथ क्रीडा किया करते थे। शिवा को छोड़कर उसने सभी रानियों को भ्रष्ट कर दिया था।

स्कंद और मुकुन्द की पूजा की भाँति शिवपूजा भी महावीर के समय प्रचलित थी।¹⁷³ ढोढसिवा की पूजा की जाती थी।¹⁷⁴ किसी पर्वत के निर्झर में शिव की प्रतिमा विद्यमान थी, पत्र पुष्प और गूगुल से उसकी पूजा की जाती, उसका सिंचन और

उपलेपन किया जाता तथा हस्तिमद से उसे स्नान कराया जाता।¹⁷⁵ काष्ठ निर्मित शिव देवता का उल्लेख मिलता है।

वैश्रवण मह :

वैश्रवण अथवा कुबेर को उत्तर दिशा का लोकपाल तथा सभी माल खजाने का कुबेर कहा गया है, उसके तैरते हुये प्रासाद को गुह्यक वहन करके ले जाते हैं, जहां वह रत्नों को धारण किये स्त्रियों से परिवेष्टित रहता है। वह दैदीप्यमान कुण्डल धारण करता है अत्यन्त धनाढ्य है। दिव्य आसन और पाद पीठ का धारक है तथा नन्दनवन और अलका नालिनी से आने वाली सुखद समीर का वह उपभोग करता है। अलका कैलाश पर्वत पर स्थित है। वैश्रवण यक्ष राक्षस और गुह्यकों की अधिपति कहा जाता है।¹⁷⁶ जैन सूत्रों में वैश्रवण को यक्षों का अधिपति और उत्तर दिशा का लोकपाल कहा है।¹⁷⁷

नाग मह :

ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणों के अनुसार सर्वदेवता सामान्यतया पृथ्वी के अधः स्तल में निवास करते हैं। जहां शेषनाग अपने सहस्र फण से पृथ्वी का भार संभाले हुये हैं। जैन परम्परा के अनुसार राजा भागीरथ के समय से ही नागबलि का प्रचार हुआ। अयोध्या के राजा सगर चक्रवर्ती के 60 हजार पुत्र थे, जिनमें जण्डुकुमार सबसे बड़ा था। एक बार जण्डुकुमार अपने भाई बन्धुओं के साथ अष्टपाद पर्वत पर जिन चैत्यों की वन्दना के लिये गया। वहाँ चैत्यों की रक्षा के लिये उसने पर्वत के चारो ओर एक खाई खोदना आरम्भ किया। खोदते-खोदते दण्डरत्न नाग भवनों में जाने लगा, जिससे नाग भवन टूट फूट गये। यह देखकर नागकुमार नागराज ज्वलनप्रभ के पास पहुंचे। नागराज क्रुद्ध होकर सगरपुत्रों के पास आया¹⁷⁸ और कहने लगा कि तुम लोगों ने नागलोक में जो उपद्रव किया है वह तुम्हारे सबके बध का कारण होगा। जण्डुकुमार ने नागराज से क्षमा मांगकर उसे शांत किया। जण्डुकुमार ने जब दण्डरत्न से गंगा को भेदकर उस मणि को भरना चाहा लेकिन यह जल नाग भवनों में भर गया। नागराज क्रोध से आग बबूला हो गया। इस बार उसने सगर पुत्रों के बध करने के लिये नयन विष महासर्प भेजे जिन्हे देखते ही

सगर के पुत्र भस्म हो गये।¹⁷⁹ उसके बाद सगर ने जण्डुकुमार के पुत्र भगीरथ को नागराज की आज्ञा से गंगा को समुद्र में ले जाकर डालने का आदेश दिया नागकुमारों की पूजा द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया गया। इसी समय से नागबलि का प्रचार हुआ नागयज्ञ का उल्लेख मिलता है। साकेत नगरी के¹⁸⁰ उत्तरपूर्व में एक महान नागगृह था जो अत्यन्त दिव्य और सत्य माना जाता था, एक बार रानी पद्ममावती ने बड़ी धूमधाम से नागयज्ञ मनाने की तैयारी की। उसने माली को बुलाकर पुष्पमण्डल को पंचरंगा पुष्पों और मालाओं से सजाने को कहा। हंस मृग मयूर क्रौंच, सारस, चक्रवाल, मदन शाल और कोकिल की चित्र रचना से पुष्प मंडल शोभित किया गया। इसके बाद स्नान करके अपने सगे सम्बन्धियों के साथ धार्मिकयान में सवार होकर पद्ममावती पुष्करिणी के पास पहुंची। वहाँ उसने स्नान किया और गीले वस्त्र पहने हुए कमल पत्र तोड़े फिर नागगृह की ओर प्रस्थान किया उसके पीछे-पीछे अनेक दासियाँ और चेटियाँ चल रहीं थी। पुष्पपटल और धूप पात्र उनके हाथ में थे इस प्रकार बड़े ठाठ से पद्ममावती ने नागगृह में प्रवेश किया। लोकमस्तक से उसने प्रतिमा को झाड़-पूँछ कर धूप जलाकर नागदेव की पूजा की¹⁸¹ नागकुमार धरणेन्द्र द्वारा जैनों के 23वें तीर्थकर पार्श्वनाथ की अर्चना किये जाने का उल्लेख है।¹⁸²

यक्ष मह :

प्राचीन भारत में यक्ष की पूजा का बहुत महत्व था, इसलिये प्रत्येक नगर में यक्षायतन बने रहते थे। जैन ग्रन्थों में उल्लेख है कि शील का पालन करने से यक्ष की योनि में पैदा होते थे।¹⁸³ तथा यक्ष देव दानव, गंधर्व और किन्नर ब्रह्मचारियों को नमन करते हैं।¹⁸⁴ जैन सूत्रों में पूर्णभद्र, मणिभद्र, श्वेतभद्र, हस्तिभद्र, सुमनोभद्र, व्यतिपातिकएभद्र, सभुद्र, सर्वताभद्र, मनुष्ययक्ष, वनाधिपति, वनाहार रूप यक्ष और यक्षोत्तम नाम के तेरह यक्ष गिनाये गये हैं।¹⁸⁵ इनमें पूर्णभद्र और मणिभद्र का विशेष महत्व है, ¹⁸⁶ इन्हे निवेदनपिंड अर्पित किया जाता था, महावीर के समय इनके चैत्यों का उल्लेख मिलता है।

चम्पा नगरी के उत्तरपूर्व में स्थित पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है। यह चैत्य प्राचीनकाल से चला आ रहा था, पूर्व पुरुषों द्वारा निरूपित था,

अत्यन्त प्रसिद्ध था, आश्रित लोगों को वृत्ति देने वाला था तथा उसकी शक्ति और सामर्थ्य सब को ज्ञात थे। यह चैत्य छत्र ध्वजा, घट और पताकातिपताका से मण्डित था। उस समय (रूएदर) प्रमार्जनी से युक्त था, यहां वेदिका बनी हुई थी। भूमि गोबर से लिपी रहती थी, भित्तियाँ खड़िया मिट्टी से पुती रहती थी, गोशीर्ष और रक्त चंदन के पाँच अंगुलियों के छापे लगे हुये थे, द्वारों पर चंदन कलश रखे थे और तोरण बंधे हुये थे। पुष्पमालाओं के समूह यहां लटके हुये थे पंचरंगो से सुगन्धित पुष्पों के ढेर लगे थे तथा अगरू कुदरूक और तुरुस्क लोहबान की सुगन्धित धूप महक रही थी। यहाँ नट, नर्तक, मल्ल पौष्टिक बेलवंक (विद्वषक) प्लवक तैराक कथक कथा कहने वाले, लासक (भाड) आख्यायक (ज्योतिष), लख मंख तूणइल्ल तूणा बजाने वाले, तुववीणिक (तूंबा बजाने वाले), भोजक (भोज) और मगध (स्तुति पाठ) अपने खेल तमाशे आदि दिखाते थे यह चैत्य चंदन और गंध आदि से पूजनीय और अर्चनीय था। चारो ओर से एक महान वनखण्ड से यह परिवेष्टित था, जिसमें भौँति-भौँति के वृक्ष फल फूल लगे थे।¹⁸⁷

समिल्ल नामक नगर के वाह्य उद्यान में सभा से युक्त एक देव कुलिका में मणिभद्र यक्ष का आयतन था। एक बार इस नगर में शीतला का प्रकोप होने पर नागरिकों ने यक्ष की मनौती की उपद्रव शांत होने पर वे अष्टमी आदि के दिन उद्यापनिका करेंगे। कुछ समय बाद रोग शांत हो गया।

देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण को वेतन देकर पूजा करने के लिये रख दिया गया और वह अष्टमी आदि के दिन वहाँ की यक्ष सभा को लीप पोतकर साफ रखने लगा।¹⁸⁸

ऐसे भी अनेक यक्षों के उल्लेख जैन सूत्रों में आते हैं जो शुभ कार्यों में सहायक होते थे। महावीर अपने विहार काल में जब ध्यान में अवस्थित हो जाते तो विभेलग यक्ष उनकी रक्षा किया करता।¹⁸⁹ अश्व रूपधारी सेलग (शैलक) चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी के दिन लोगों की सहायता करने के लिये उद्यत रहा करता था। चम्पा के जिन पालित और जिन रक्षित नाम के व्यापारियों की रत्नद्वीप की देवी से रक्षा करने के लिये उन्हें अपनी पीठ पर बैठा उसने चम्पा में लाकर छोड़ दिया था।¹⁹⁰ वाराणसी के तिंदुग उद्यान गंडोतिंदुग यक्ष मातंग ऋषि का भक्त था और उक्त उद्यान में विहार करने पर यक्ष ने उनकी रक्षा की थी।¹⁹¹ संतान उत्पत्ति के लिये भी यक्ष की आराधना की

जाती थी। धन्य सार्थवाह की पत्नी भद्रा के कोई संतान नहीं होती थी। धन्य की आज्ञा प्राप्त कर स्नान आदि से निवृत्त हो, वह राजगृह के बाहर नाग भूत यक्ष इन्द्र और स्कंद आदि के देवकुल में आयी उसने प्रतिमाओं का अभिषेक पूजन किया और मनौती की कि यदि उसके संतान होगी तो वह देवताओं का दान आदि से आदर सत्कार करेगी और अक्षयनिधि से उनका संवर्धन करेगी। फिर वाद में नाग यक्ष आदि को उपयाचित करती हुई वह काल यापन करने लगी। कुछ समय बीत जाने पर भद्रा की अभिलाषा पूर्ण हुई। गंगादत्ता के भी कोई संतान नहीं थी। वह वस्त्र गंध, पुष्प और माला आदि लेकर अपने मित्र और सगे सम्बन्धियों के साथ उबरदत्त यक्ष के आयतन में पहुंची। मोरपंख की कूची से उसने यक्ष की मूर्ति को साफ किया जल से उसका अभिषेक किया रसदार वस्त्र से उसे पोछा और वस्त्र पहनाये। उसके बाद पुष्प आदि से यक्ष की उपासना की और फिर सन्तान के लिये मनौती करने लगी।¹⁹² सुभद्रा ने भी सुरंबर के यक्ष आयतन में पहुँचकर यक्ष की मनौती की यदि उसको पुत्र होगा तो वह सौ भैंसों की बलि चढ़ायेगी।¹⁹³

सन्तान की अभिलाषा पूर्ण करने में हरिणगमेषी का नाम खास कर लिया जाता है। मथुरा के जैन शिलालेखों में भगवा नेमेषों कहकर उसका उल्लेख किया कल्पसूत्र में शक के आदेश हरिणगमेषी द्वारा महावीर के गर्भ परिवर्तन किये जाने का उल्लेख पहले आ चुका है। कल्पसूत्र की हस्तलिखित प्रतियों में उसके चित्र मिलते हैं। भद्रिलपुर के नाग गृहपति की पत्नी आराधना से हरिणगमेषी प्रसन्न हो गया। उसने सुलसा और कृष्ण की माता देवकी को एक साथ गर्भवती किया दोनों ने साथ-साथ प्रसव किया। सुलसा ने मृत पुत्र को जन्म दिया और देवकी ने जीवित पुत्र को, लेकिन हरिणगमेषी ने दोनों का गर्भ बदल दिया। आगे चलकर कृष्ण द्वारा हरिणगमेषी की आराधना किये जाने पर देवकी के गजसुकुमार नामक पुत्र हुआ।¹⁹⁴ यक्ष हानि भी पहुंच सकते थे और लोगों का वध कर प्रसन्न होते थे।¹⁹⁵ शूलपाणि वर्धमानक गाँव का एक प्रसिद्ध यक्ष था उसने क्रुद्ध होकर गाँव में महामारी फैला दी जिससे लोग गाँव छोड़कर भागने लगे। महामारी का उपद्रव फिर भी शांति न हुआ। यह देखकर लोग वापस लौट आये, वे नगर देवता के समक्ष विपुल उपहार लेकर उपस्थित हुये और उससे क्षमा मांगने लगे। यक्ष ने कहा कि यदि तुम मनुष्यों की हड्डियों पर देवकुल बनाने को तैयार हो तो महामारी शांत हो सकती है।

गाँव वालों ने यक्ष के देवकुल में पूजा अर्चना करने के लिये इन्द्रशर्मा नाम का एक पुजारी रख दिया, उस समय से यह गाँव अहिग्राम या अस्थिग्राम कहा जाने लगा।¹⁹⁶

साकेत के उत्तरपूर्व में सुरप्रिय यक्ष का आयतन था। वह प्रति वर्ष चित्रित किया जाता था और लोग उसका महान उत्सव मनाते थे। लेकिन जो चित्रकार उसे चित्रित करता, यक्ष उसे मार डालता। यदि यक्ष चित्रित न किया जाता तो वह महामारी फैला देता। यह देखकर जब नगर के सब चित्रकार भागने लगे तो राजा ने सब चित्रकारों को इकट्ठा किया और सबके नाम लिखकर एक घड़े में डाल दिये। ये नाम प्रति वर्ष घड़े में से निकाले जाते और जिस चित्रकार का नाम निकला उसे यक्ष को चित्रित करना पड़ता है। एक बार कौशाम्बी से भागकर आये हुये किसी चित्रकार के लड़के की बारी आयी। उसने उज्ज्वल वस्त्र पहने, अपनी नयी कूची से यक्ष को चित्रित किया। यक्ष ने सन्तुष्ट होकर उससे वर मांगने को कहा। चित्रकार ने चाहा कि द्विपद चतुष्पद आदि प्राणियों के केवल एक भाग को देखकर वह उन्हे पूर्ण रूप से चित्रित कर सके। यक्ष ने प्रसन्न होकर वरदान दे दिया।¹⁹⁷

जैन सूत्रों ने इन्द्रमह धर्नुमह, स्कंदमह, कुमारमह और भूतमह के साथ यक्षमह का भी उल्लेख जाता है।¹⁹⁸ कितनी ही बार जैन साधु और जैन साध्वियों को यक्ष से आविष्ट हो जाने पर, किसी तांत्रिक आदि के पास जाकर चिकित्सा करानी पड़ती थी। राजगृह मुद्गरपाणि यक्ष के हाथ में एक हजार पल की लोहे के एक बड़ी भारी मुद्गर थी। नगर की अर्जुनक माली कुल परम्परा से इस यक्ष का बड़ भक्त था। वह प्रतिदिन अपनी टोकरी लेकर नगर के बाहर के उद्यान में जाता, पुष्पों का चयन करता पुष्पों से यक्ष की अर्चना करता और फिर राजमार्ग में बैठकर अपनी आजीविका चलाता। एक दिन माली अपनी स्त्री के साथ उद्यान पुष्प चयन करने आया। उस समय वहाँ एक गण्डों की टोली आयी थी। माली और उसकी स्त्री को देख वे यक्षायतन के किवाड़ों के पीछे छिप गये। उसके बाद अवसर पाकर उन्होंने माली को बांध लिया और उस स्त्री के साथ विषयभोग करने लगे। यह सब देखकर अर्जुनक को यक्ष पर अश्रद्धा हो गयी। यक्ष ने माली के शरीर में प्रवेश किया तथा अपनी मुद्गर से गण्डों की टोली और मालिन को जान से मार डाला।

यक्षों द्वारा कन्याओं के साथ विषयभोग करने के उल्लेख भी मिलते खुल गया।¹⁹⁹ गंडितिंदुक यक्ष का उल्लेख आ चुका है वह कौशलराज की कन्या का उपभोग करता था और भी अनेक यक्षों के उल्लेख मिलते हैं। भंडीर की यात्रा का मथुरा में विशेष महात्म्य माना जाता था।

नर नारी एकत्रित होकर यक्ष की यात्रा करने जाते थे।²⁰⁰ उन्होंने भंडोरवट भंडीरावतंसक, चैत्य, भंडीरावतंसक उद्यान और भंडीरवन आदि यक्ष के स्मारक बनवाये थे।²⁰¹ मथुरा में जक्खगुहा (यक्षगुहा) का उल्लेख है, यहाँ आर्यरक्षित ने विहार किया था²⁰² सनत्कुमार और वैताढ्यवासी के असिताक्ष नामक यक्ष से युद्ध होने का तथा पोतनपुर में राजसिंहासन पर स्थापित वैश्रवण यक्ष की प्रतिमा का इन्द्र के वज्र से नष्ट होने का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा अमोघदर्शी²⁰³, श्वेतभद्र ²⁰⁴, सोरिय ²⁰⁵, धरण ²⁰⁶, लेप्यकमणिभद्र²⁰⁷ आदि अनेक यक्षों के नाम मिलते हैं। मानवों की भाँति यक्षों में भी ऊँच-नीच जातियाँ मानी गयी हैं। आडंबर अथवा हराडिक्क यक्ष मातंगो का और घण्टि यक्ष।²⁰⁸ डोवो का यक्ष माना जाता था। आडंबर यक्ष का आयतन हाल मरे हुए मानवों की अस्थियों पर बनाया जाता था। प्रश्न करने पर घण्टिक यक्ष उसका उत्तर कौन में चुपके से फुसफुसाता था।

वानमंतर गुह्यकः

यक्ष के अलावा, वानमंतर वानमंतरों और गुह्यकों आदि के उल्लेख भी मिलते हैं। अनेक अवसरों पर वानमंतर देव को प्रसन्न करने के लिये सुबह दोपहर और सायंकाल में पटह बजाया जाता था।²⁰⁹ कभी गृहपत्नी के पति द्वारा अपमानित होने पर या पुत्रवती सपत्नी द्वारा सम्मान प्राप्त न करने पर अथवा अतिशय रोगी रहने के कारण अथवा किसी साधु से कोई झंझट हो जाने पर शांति के लिए, वानमंतर की पूजा उपासना की जाती थी, और वह रात्रि के समय जैन साधुओं को भोजन कराने से तृप्त होता था।²¹⁰ नया मकान बनकर तैयार हो जाने पर भी वानमंतरों की अराधना की जाती थी। कुंडल मेण्ड वानमंतर को यात्रा भृगुकच्छ के आसपास के पाल नामक वानमंतर ने तोसलि में ऋषि तडाग (इसितडाग)²¹¹ नाम का एक तालाब बनाया था, जहाँ प्रतिवर्ष आठ दिन तक

उत्सव मनाया जाता था जैन सूत्रों में पिशाच, भूत, राक्षस, किन्नर, किपुलिष, महोरग और गन्धर्व इन आठ व्यंतर देवों के आठ चैत्य वक्षों का उल्लेख है, पिशाच का कदंब, यक्ष का वट भूत का तुलसी, राक्षस का कांडक, किन्नर का अशोक किंपुरुष का चम्पक, महोरग का नाग और गन्धर्व का तेदुक।²¹²

वानमंतरियों में सालेज्जा महावीर की भक्त थी लेकिन कटपूतना²¹³ ने उन्हें बहुत कष्ट पहुंचाया था, डॉकिनियों और शाकिनयाँ भी उपद्रव मचाती रहती थी, गोल्ल देश में रिवाज था कि डॉकिनी के भय से रोगी को बाहर नहीं निकाला जाता था।²¹⁴

गुह्यकों के विषय में लोगों का विश्वास था कि वे कैलाश पर्वत के रहने वाले हैं और इस लोक में श्वानों के रूप में निवास करते हैं।²¹⁵ कहते हैं कि देवों की भौति वे पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते और उनकी पलक नहीं लगती।²¹⁶ यदि कभी कालगत होने के पश्चात जैन साधुव्यंतर देव से अधिष्ठित हो जाता तो उसके मूत्र को बाँये हाथ से लेकर उसके मृत शरीर को सींचा जाता और गुह्यक का नामोच्चारण कर उससे संस्तारक से न उठने का अनुरोध किया जाता।²¹⁷

यक्ष आयतन (चैत्य) :

प्राकृत और पालि ग्रन्थों के आयतन को चेइय अथवा चेतिय नाम से उल्लिखित किया है। महाभारत में किसी पवित्र वृक्ष को अथवा वेदिका वाले वृक्ष को चैत्य कहा गया है। देवों, यक्षों और राक्षसों आदि का निवास स्थान होने के कारण इसे हानि न पहुँचाने का यहा विधान हैं। रामायण में चैत्यगृह चैत्य प्रासाद और चैत्य वृक्ष का उल्लेख है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार चैत्य को दो गाँवों या जिलो के बीच का सीमा स्थल माना जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चैत्य को 'देवगृह' कहा है और इसलिये यहाँ चैत्य पूजा को प्रमुखता दी गयी है जैन आगमों के टीकाकार अभयदेवसूरि ने चैत्य को देव प्रतिमा या व्यंतरायतन के अर्थ में प्रयुक्त किया है।²¹⁸

हेमचन्द्र आचार्य ने 'जिन सदन' के अर्थ में इसका प्रयोग किया है।²¹⁹ जान पड़ता है कि प्रत्येक नगर में चैत्य होते थे, जहाँ महावीर बुद्ध तथा अन्य अनेक साधु श्रमण ठहरा करते थे। चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य का उल्लेख किया जा चुका है, राजगृह में गुणसलिय

और आमलकप्पा में अंवसालवन नामक चैत्य थे। चैत्य के स्थानों पर यक्षाधिष्ठित उद्यानों का भी उल्लेख आता है। उदाहरण के लिये वाणियगाम में सुधर्म यक्षाधिष्ठित दुईपलास (ध्रुतिपलाश)²²⁰ मथुरा में सुदर्शन यक्षाधिष्ठित भंडोर²²¹ और वर्धमानपुर में मणिभद्र यक्षाधिष्ठित वर्धमान नामक उद्यान थे। ये यक्षायतन कभी नगर के बाहर उद्यान में कभी पर्वत पर कभी तालाब के समीप कभी नगर के अन्दर होते थे। कुछ चैत्यों का निर्माण स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इनमें द्वार, कपाट और भवन आदि बने रहते थे कोई देवकुलिका मानव के एक हाथ प्रमाण और पाषाण के एक खण्ड से बनायी गयी थी। देवी देवताओं की मूर्तियां प्रायः लकड़ी की बनी होती थी तथा कुछ यक्षों की मूर्तियों के हाथ में लोहे की गदा रहती थी। चैत्य के साथ सभा भी रहती थी जिसे गोबर से लीप तोप कर साफ रखा जाता था।²²²

भूतमहः

भूतों को निशाचर कहा गया है जो राक्षस आदि के साथ गिरोह बनाकर निकलते थे, हिन्दू पुराणों में इन्हें भयंकर और मांसभक्षी कहा गया है। भूतों को बलि देकर प्रसन्न किया जाता है²²³ और बुद्धि मानव सोने के पहले उनका स्मरण करते हैं। महाभारत में तीन प्रकार के भूतों का उल्लेख है – उदासीन, प्रतिकूल और दयालु। रात्रि में भ्रमण करने वाले भूत प्रतिकूल कहे गये हैं।²²⁴

भूतमह की गणना महामहों में की गयी है यक्षमह कार्तिक पूर्णिमा को और भूतमह चैत्र पूर्णिमा को मनाया जाता था, भूतग्रह से पीड़ित मनुष्यों की चिकित्सा भूतविद्या द्वारा की जाती थी। जिसके लिये शान्ति कर्म तथा देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस आदि देवताओं को बलि चढ़ाई जाती थी। भूत विद्या में कुशल भूतवादियों का उल्लेख मिलता है। किसी राजा के दरबार में रोग का उपशमन करने के लिये तीन भूतवादी उपस्थित हुए। प्रथम ने कहा – “मेरे पास एक मंत्रसिद्ध भूत है जो सुन्दर रूप बनाकर गोपुर की गलियों में घूमता है लेकिन किसी को उसकी ओर देखना नहीं चाहिये। जो उसकी ओर देखेगा उससे वह रूष्ट हो जायेगा और उसे वह मार डालेगा तथा जो उसे देखकर मुँह नीचे की ओर लेगा वह रोग से मुक्त हो जायेगा।” दूसरे ने कहा – “मेरा भूत अत्यन्त

ऐश्वर्यवाला है लम्बा उसका पेट है ,नाक उसकी चपटी है ,कोख आगे की ओर निकली है ,उसके पाँच सिर हैं, और एक पैर वाला है, शिखा रहित है और वीभत्स उसका रूप है। वह अट्ठाहस करता हुआ गाता और नाचता हुआ अपने विकृत रूप में भ्रमण करता है। उस समय जो कुछ होता है हंसता है या प्रवचन करता है, उसके सिर के वह सात टुकड़े कर डालता है तथा जो उससे अच्छी तरह बोलता है उसका अभिनंदन करता है और धूप, पुष्प आदि द्वारा उसकी पूजा करता है उसे वह सभी रोगों से मुक्त कर देगा।” तीसरे भूतवादी ने कहा – “राजन मेरे पास एक इसी तरह का भूत है लेकिन उसका कोई अच्छा करे या बुरा वह दर्शनमात्र से सब रोगियों का अच्छा कर देता है।” राजा इस भूतवादी से प्रसन्न हुआ और उसने उसे अपने यहां रख लिया।²²⁵ इसके सिवाय उनके गारुडिकों, भोगिकों (भोइय), भट्टों एवं चूहों का उल्लेख आता है। कौशलराज की प्रजा यक्ष पूजा के लिये यक्षायतन में पहुँची तो यक्ष की प्रतिमा की प्रदक्षिणा करते समय वह यक्ष से आविष्ट हो गयी। और कुछ कुछ बकने लगी, तो राजा ने गारुडिक, भोगि, भट्टों और चूहों को बुलाकर तंत्र तंत्र और रक्षा—मंडल आदि से उसकी चिकित्सा करायी।

लोगों का भूतप्रेतों में बहुत अधिक विश्वास था, उनका मानना था कि भूत दूकानों से खरीदे जा सकते हैं। कहते हैं कि कुत्तियावण (कुत्रिकापण) से दुनिया भर की सारी वस्तुएं खरीद जा सकती थीं, भूत भी यहां मिलते थे। राजा प्रद्यौत के समय उज्जैनी में इस प्रकार की नौ दुकानें थी, राजगृह में भी थी। एक बार भृगुकच्छ का कोई वैश्य उज्जैनी की दुकान से भूत खरीदने आया। दुकानदार ने कहा भूत मिल सकता है लेकिन यदि उसे काम न दोगे तो वह तुम्हें मार डालेगा। वैश्य भूत खरीदकर चल दिया। वह उसे जो काम बताता वह उसे तुरन्त कर डालता। आखिर में तंग आकर वैश्य ने एक खम्भा गड़वा दिया उस पर उतरते चढ़ते रहने को कहा। इस भूत ने भड़ौच के उत्तर में भूततडाग नामक एक तालाब बनाया।

भूतों के साथ पिशाच भी जुड़े हुये हैं। पिशाच मांस का भक्षण करते और रूधिर का पान करते। ज्ञातृधर्मकथा में तालजंघ नामक एक पिशाच का वर्णन आता है, जो उपद्रव करने के लिये समुद्र के व्यापारियों के सामने आकाश में उपस्थित हुआ था। देखने

में वह काली स्याही के समान था उसके ओठ लम्बे थे। दांत बाहर निकले थे। युगल जिह्वाएं लपलपा रहीं थी गाल अन्दर की धंसे थे। नाक चपटी थी। कुटिल भौहें थी, आँखों में लाली चमक रही थी, उसका वक्षस्थल और कुक्षि विशाल था तथा अट्हास करता, नाचता और गर्जना करता हुआ हाथ तीक्ष्ण तलवार लिये वह आ रहा था। पिशाच प्रायः श्मसानों में रहते थे, लोग इन्हें अमवस्या के दिन बलि चढ़ाते थे। मल्ल योद्धा कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को श्मसान में जाकर, उन्हें भोजन कराते और यदि वहाँ से वे विजयी होकर लौट आते हो, राजा उन्हें अपने यहां नियुक्त कर लेता था।

आर्या और कोट्टकिरियामहः

आर्या और कोट्टकिरिया दोनो दुर्गा के रूप हैं, जिसे चंडिका या चामुण्डा भी कहा गया हैं युद्ध के लिये जाते समय लोग चामुण्डा को प्रणाम करते थे। बकरे की तथा भैंसे और पुरुष आदि बधकर तथा पशुओं के सिर द्वारा योग आदि करके उसे प्रसन्न करते थे अपने जमाई की तीर्थ यात्रा कुशल पूर्वक सम्पन्न होने के लिये स्त्रियाँ कोट्टार्या को बकरे की बलि चढ़ाया करती थीं। जैन टीकाकारों ने आर्या और कोट्टकिरिया में अन्तर बताते हुये कहा है जो कूष्माण्डिनी की भॉति खड़ी रहती है वह आर्या और वही जब महिष का वध करने के लिये उद्धत हो जाती है कोट्टकिरिया कहलाती है।

ग. लौकिक देवता

वैदिक देवता और लोक देवता इनके मेल जोल की प्रक्रिया वैदिक युग में ही आरम्भ हो गयी थी। जीवन के इस तथ्य का प्रमाण वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। अथर्ववेद²²⁵ के एक सूत्र में बड़ी स्वाभाविक रीति से वैदिक देवों के साथ अन्य लोक देवताओं का अनौपचारिक उल्लेख पाया जाता है। उसके नामों की परिगणना में कोई क्रम नहीं है। दोनो एक दूसरे के साथ मिल गये हैं। सूक्त का ऋषि जब अपने समकालीन देवताओं के विषय में सोचने लगा तो लोक और वेद, दोनो ही कोटियों के देव उसके दृष्टिपथ में एक साथ उतिराने लगते हैं, उनका मिलता-जुलता सूक्त आया है। जो इस

प्रकार है। अग्नि, वनस्पति, औषधि, वीरुध, इन्द्र, वृहस्पति, सूर्य, वरुण, मित्र, विष्णु, भग, अंश, विवस्वान्, सविता, पूजा, त्वष्टा, गन्धर्व, अप्सरायें, अश्विनी, ब्रह्मणस्पति, अर्यमा, आहोरात्र, सूर्य, चन्द्र, आदित्य, वात, पर्जन्य अन्तरिक्ष, दिशा, आशा, उषा, सोम, भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, द्यूलोक, नक्षत्र, भूमि, यक्ष, पर्वत, समुद्र, नदी, वेशन्त, सप्तर्षि, जल, प्रजापति, यम, पितृ, धुलो, अन्तरिक्ष पृथ्वी के देव आदित्य रुद्र वसु, राक्षस, सर्प, पुण्यजन मृत्यु, ऋतु, ऋतुपति, मास, संवत्सर दक्षिण पश्चिम पूर्व उत्तर के विश्वदेव, उनकी पत्नियां भूत, भूतपति, पंच दिशाओं की देवियों, द्वादश ऋतुओं के देव। देवी देवताओं की यह सूची उस विरादरी या भाईचारे का संकेत करती है, जिसमें ऊँच नीच के भेदभाव के बिना देवों का सब समाज एक स्थान में एकत्रित हुआ। इसमें एक ओर इन्द्र, अग्नि, वृहस्पति मित्र, वरुण, विष्णु, भग, सविता, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा सोम आदि टकसाली वैदिक देवता हैं, जिनकी पद प्रतिष्ठा बहुत ऊँची थी। वहीं दूसरी ओर यक्ष, राक्षस, सर्प, पुण्यजन, भूत आदि उस कोटि के छुटभैये देवता भी हैं, जिनका संबंध आदिम जातियों से था। भूमि पर्वत नदी समुद्र और नक्षत्र, ये भूमि से संबंधी देवता थे, जिनकी परम्परायें लोक में और साहित्य में पायी जाती हैं।

लोक में प्रतिवर्ष समय-समय पर देवी देवताओं के मेले जुड़ते थे और उत्सव हुआ करते थे ऐसे मेलों की पद्धति लोक में अभी तक चालू है। प्रत्येक जिला या प्रदेश के प्रमुख मेलों की जाँच की जाये तो प्रत्येक मेले के पीछे किसी पुरानी देवी देवताओं की पूजा का कारण में रूप में पायी जाती है। प्राचीन समय में ऐसे मेलों को 'मह' कहते थे, काशिका के एक उदाहरण में गंगा जी के बड़े मेले को गंगामह कहा गया है।²²⁶ इस तरह का मेला उत्तर भारत में गंगा जी के किनारे बहुत से स्थानों में आज भी लगता है। 'मह' शब्द आज भी संस्कृति में भी प्रयुक्त हुआ है किन्तु उसका मूल वैदिक 'मख' ज्ञात होता है। हरिवंश के कई हस्त लेखों में 'मख' और 'मह' दोनो पाठान्तर मिलते हैं,²²⁷ किन्तु तब भी यह शब्द इस अर्थ में अधिक प्रचलित था। उच्च धर्म या द्विजातियों के जीवन में जो स्थान वैदिक यज्ञो का था; लोक के जीवन में वही स्थान मह नामक उत्सवों का था। हरिवंश पुराण में कृष्ण द्वारा गोवर्धन उठाये जाने की लीला को गिरिमह और गिरियज्ञ दोनो शब्दों से सम्बोधित किया गया है। स्थितः शक्रमहस्तात श्रीमान्

गिरिमहस्त्वयं,²²⁸ तन्महयम रोचते गोपा गिरियज्ञः प्रवर्तताम्।²²⁹ इसी प्रसंग में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि ब्राह्मण जिस प्रकार मंत्रों द्वारा यज्ञ करते हैं, उसी प्रकार किसान हल द्वारा सीतायज्ञ और गोप लोग गोपालन द्वारा गिरियज्ञ करते हैं।

मंत्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः। गिरियज्ञास्तथा गोपा
इज्योडस्माभिर्गिरिर्वने।²³⁰

आर्थिक जीवन और सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न श्रेणी में जीवन का जो ढंग प्राप्त होता है उसी का यहाँ स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के 'मह' या उत्सवों की सूचियां प्राचीन साहित्य में मिलती हैं। जैन ग्रन्थ या धम्मकहा (ज्ञाता धर्मकथा) के अनुसार लोक देवताओं की सूचियों का क्रम इस प्रकार है –

इन्द्रमह ऋ इन्द्रमह, खंदमह ऋ स्कन्दमह, रूद्रजता ऋ रूद्रयात्रा, सिवजता ऋ शिवयात्रा, वेसमणजाता ऋ वैश्रवणयात्रा, नागजता ऋ नागयात्रा, जक्खजत्ता ऋ यक्ष यात्रा, भूयजता ऋ भूतयात्रा, नईजत्ता ऋ नदीयात्रा, तलावजत्ता ऋ तडागयात्रा, रूक्खजत्ता ऋ वृक्षयात्रा, चेइयजत्ता ऋ चैत्ययात्रा, पव्वयजत्ता ऋ पर्वत यात्रा, अन्जाजजन्ता ऋ उद्यानयात्रा, गिरिजत्ता ऋ गिरियात्रा।²³¹

एक दूसरी बड़ी सूची राजप्रश्नीय सूत कंडिका में आई है—

इन्द्रमह, खंदमह, रूद्रमह, मउन्दमह, सिवमह, वेस्समणमह, नागमह, जक्खमह, भयमह, थूभमय, चेइय, रूक्ख, गिरिमह, दरीमह, अगडमह (अवटमह), नईमह, सरमह (सागरमह) है।

इनके अलावा दो विशिष्ट सूचियां बौद्ध साहित्य में भी पायी जाती हैं। एक सूत्त निपात की निद्देस नामक व्याख्या और दूसरी मिलिन्दपण्हों में निछेस में इन देवताओं के पूजने और मानने वालों को व्रतिक (पालि-वतिक) कहा गया है। वह सूची इस प्रकार है—

हात्थिवतिक, अस्सवतिक, गोवतिक, कुक्कुरवतिक, काकवतिक, वासुदेववतिक, बलदेव वतिक, पुराणभट्टवतिक, मणिभट्टवतिक, अग्गिवतिक, यक्खवतिक, सुपण्णवतिक, असुरवतिक, महाराजवतिक, चन्दिमवतिक, सूरियवतिक, इन्दरवतिक, ब्रह्मावतिक, देववतिक, दिसावतिक।²³²

मिलिन्दपण्हों में इन देवताओं के मानने वाले आचार्यों के अनुयायियों को गण कहा गया है किन्तु उस सूची के मूल में भी तथ्य वही हैं अर्थात् इस प्रकार के कितने ही छोटे-मोटे देवताओं की पूजा लोक में प्रचलित थी। मिलिन्दपण्हों की सूची इस प्रकार है

पव्वता, धम्मगिरिया त्र धर्मगिरीय ब्रह्मागिरिया, पिचाश, मणिभद्रा, चन्दिम, सूरिय कालिदेवता, सिवा त्र शिव, वसुदेव।²³³ इसी प्रकार की एक छोटी सूची²³⁴ जिसमें देवताओं के नाम ये हैं – यक्ष, जम्भक, विरूपाक्ष, लोहिताक्ष, वैश्रवण, महासे, महादेव महाराज। इसके अतिरिक्त विभिन्न उदाहरणों में निम्नलिखित नाम और भी मिलते हैं – अज्जामह त्र आर्यामह, कोट्टकिरयामह त्र (तमिल देश की बड़ी देवी) धुर्नमह काममह, ब्रह्ममह²³⁵, रेवतमकमह²³⁶ मज्झिमनिकाय में गोव्रत और कुक्कुरव्रत का जो निददेस की सूची में भी है। विशेष उल्लेख आया है। गोव्रत के मानने वाले अपने सिर पर सींग बांधते थे और गायों के साथ घास चरते हुये घूमते थे। इसी तरह कुक्कुरव्रत पालने वाले सब कुछ कुत्ते की भाँति व्यवहार करते हैं।²³⁷

इस प्रकार के लोक देवताओं के विश्वास को 'व्रत' या 'भुक्ति' कहा गया है। जैसे बुद्ध और महावीर या मक्खालिगोसाल के अनुयायी अपने गण या गच्छों में संगठित थे, वैसे ही इन दूसरे देवताओं के अनुयायी भी अपने-अपने गणाचार्यों के अधीन रहकर जीवन बिताते थे। इन लोगों का ऐसा विश्वास था कि जिस देवता की भक्ति की जायेगी बाद में वे उसी देवता का रूप ग्रहण करेंगे।²³⁸ (देवा वा भवस्सति देवज्जतरोवा)

भगवद्गीता में लोक देवताओं की परम्परा का उल्लेख किया गया है वहां भी उनकी पूजा मान्यता के लिये व्रत शब्द प्रयुक्त हुआ है –

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रताः।

भूतानि यान्ति भुतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।²³⁹

इन देवताओं के व्रत पालन करने वाले व्रतिक अथवा इनकी भक्ति करने वाले भक्त अथवा इनका भजन करने वाले अथवा मह या उत्सव के रूप में इनकी यात्रा करने वाले इन विभिन्न नामों के पीछे एक ही भाव था। गीताकार ने इन देवताओं की लम्बी सूची देते हुये उन सबको भगवान की विभूति या नानारूप कहकर समन्वय किया है किन्तु

ध्यान से देखने पर यह बात तुरन्त समझ में आ जाती है कि इन विभूतियों के रूप में लोक-देवताओं की ही गिनती गिनायी गयी है।²⁴⁰ वह इस प्रकार है – विष्णु, रवि, मरीचि, चन्द्र (शशि), इन्द्र (वासव), रुद्र, काम (कन्दर्प), वासुकिसर्प (तुलनीय वासुकी नाग के मानने बलि के लिये) नाग, नितेश, मेरू, स्कन्द, सागर, हिमालय, वरुण, पितर, यम, सिंह गरुण, वायु, नाग, गन्धर्व, अश्वत्थवृक्ष, रूक्खदेवता, उच्चैश्रवा अश्व, ऐरावतगज, कामधेनु, मकर नदी, गंगा (जाहनवी), वासुदेव, धनंजय, अर्जुन ये बिखरे हुये देवता थे। इस सबको समेटकर गीतकार ने माला की मनको की भाँति एक सूत्र में पिरो दिया और भागवतों के महानारायण विष्णु के साथ धार्मिक दृष्टि से इन्हे सम्बद्ध कर दिया है। भागवत धर्म की यह बड़ी देन थी। उसमें किसी देवी या देवता का निराकरण नहीं किया गया बल्कि सबको भगवान विष्णु का एक ही रूप मान लिया गया।

विष्णोत्तर धर्म में लोक देवताओं की सूची का उल्लेख आया है। यह स्वाभाविक है कि लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपना-अपना देवता चुन लेते हैं। जो जिसको रुचता है वह उसका देवता बन जाता है। उसी में उसके मन की भक्ति या पूरी शक्ति लग जाती है। इस प्रकार के देवता को भागवतों ने 'रोचदेवता' की संज्ञा दी।

ब्रह्मन्स्वीयस्य च रूचौ देवता याश्च पूनजम।²⁴¹

रोच नामक देवता की सूची में रोच शब्द का भी व्यापक अर्थ किया गया है, जो गुप्तयुग के भागवत, धर्म की उदार भावना के अनुकूल था। उदाहरण के लिये रोच देवताओं की सूची इस प्रकार है –

1. ब्रह्मरोच (प्रजापति ब्रह्मा के पूजन से ब्रह्मलोक की प्राप्ति और अश्वमेघ का फल मिलता है।)
2. स्वर्ग रोच
3. चक्ररोच (विष्णु के द्वादशार सुदर्शन चक्र के पूजन से भीतरी और बाहरी सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है।)
4. वानस्पत्यरोच (इस देवता की पूजा से उद्यान फल प्राप्त होता है।)
5. अन्नरोच (इससे अन्न की प्राप्ति और धान्य से हरे भरे खेत हैं, की प्राप्ति होती है।)

6. अहतवासरुच— (अर्थात् ब्रह्म मुहूर्त या उपकाल की आराधना से और पूरे दिन को भगवान विष्णु के लिये समर्पण करने से आरोग्य, रूप, तारुण्य और सौभाग्य की प्राप्ति होती है।)
7. कालरोच (इससे मनुष्य मृत्यु के प्रति सावधान होकर धर्मवित बन जाता है)
8. अग्नेयरोच (अग्निदेवता की पूजा से उसे सभी अग्निकर्म या यज्ञ आदि सिद्ध होते हैं)
9. जलरोच (इससे जल से उत्पन्न मुक्तादि और कमल से भरे हुये तालाब मनुष्य सिद्ध करता है।)
10. सूर्यरोच (इससे निरोगिता प्राप्त होती है)
11. चन्द्ररोच (चन्द्रपूजा से परम शांति मिलती है)
12. गुरुरुच (गुरुरु की पूजा से कामधेनु की तरह गुरुरु घर में आती है)
13. नियतिरोच (इससे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है)
14. विष्णुरुच (इससे विष्णु लोक की प्राप्ति का अधिकारी बनता है)
15. रूद्ररोच (इससे रूद्रलोक की पात्रता होती है)
16. कुमाररोच (इससे पुत्र पौत्रादि से गृह भरा—पूरा हो जाता है)
17. पितृरोच (पितरुं की पूजा करने से अभीष्ट फल प्राप्त होता है)
18. वरुणरोच (वरुण की पूजा से यथेष्ट अश्वुं की प्राप्ति होती है)
19. अनन्तरोच (पृथ्वी को धारण करने वाले भगवान अनन्त की पूजा करने से अनन्त फल मिलता है)
20. वायुरुच (इससे वाणिज्य में लाभ की प्राप्ति होती है)
21. यमरोच (यम की पूजा से नरक का भय नहीं रहता)
22. सास्वतरोच (देवी सरस्वती की पूजा से यथेष्ट विद्या मिलती है)
23. श्री रुच (देवी श्री लक्ष्मी जी की पूजा से उत्तम श्री की प्राप्ति होती है)

24. वैश्रवणरोच (कुबेर की पूजा से व्यक्ति प्रत्येक जन्म में धनवान बनता है)
25. शैलरोच (यह पूर्व सूचियों का गिरिपूजन या गिरिमह ही है पर्वत के पूजन से व्यक्ति दुखी होता है। इसका अर्थ यही है कि इस भावना का व्यक्ति पर्वतों में प्रतिवर्ष भ्रमण करके सुखी होगा)
26. भूरोच (पृथ्वी को देवता मानकर उसी आराधना से भूमि की प्राप्ति होती है)
27. वेदरोच (वेदों में पूज्य वृद्धि रखने से मानव में वेदज्ञान का उदय होता है और यज्ञों की सम्प्राप्ति होती है।)
28. पौरुषरोच (इससे अर्थ पुराण पुरुष अनादि अनन्त अव्यक्त भगवान नारायण प्रजापति अथवा सर्वविश्व के कारण देवाधिदेव परब्रह्म की उपासना से है, जिसके फलस्वरूप मोक्ष पथ की सम्प्राप्ति होती है।)

यह भी कहा गया है कि अपनी यथेच्छा के अनुसार देवता चुनकर उसका रोचव्रत ग्रहण करना चाहिये और प्रतिदिन केवल रात में भोजन करते हुए एक वर्ष तक व्रत का निर्वाह करना चाहिये।

इसी पुराण में इसके अतिरिक्त दो प्रकार की धार्मिक क्रिया कही गयी है – एक अन्तर्वेदि या यज्ञों का करना दूसरी वहिर्वेदि जिसमें देवताओं की पूजा आती है। अन्तर्वेदि या यज्ञ धनवानों के लिये है और वहिर्वेदि या देवपूजन निर्धनों के लिये संभव हैं फिर प्रश्न किया गया देवता कितने हैं ?²⁴²

यह सूची इस प्रकार है – ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, नासत्य, बालचन्द्र, वारह साहयदेवता, तीन लोक, विष्णु, वारहभृगुदेवता, यम, गणेश, निद्रा देवी, रति, श्रद्धा, कीर्ति, मेधा, सरस्वती, प्रज्ञा, तुष्टि, कान्ति, देवमातृकाएं, चन्द्रमा, पृथिवी देवी, दस विश्वदेव, गन्धर्व और उनका राजा चित्ररथ, देव पत्नियां, अप्सराएं, नागदेवता, पुष्कर, नलकुवर, श्री, प्रीति, उमा, मेना, भद्रकाली, कात्यायनी, धृति, स्वाहा, स्वधा, ऋद्धि अनसूया, क्षमा, सुभीमा, देवसेना, वेला ज्योत्स्नाशची, शचीगौरी, वरुणानी, यमपत्नी, धूमोर्णा, सुमहाभागा, मृत्युच्छाया।

अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी देवमातृका का या देवपत्नी का पूजन किया जा सकता है, इसके अनन्तर चार महापशुओं का देवभाव से पूजने का उल्लेख है।

ऐरावत, उच्चैश्रवाः, शिव का नन्दी वृष, विष्णु का गरुड़ इनके विषय में यह उल्लेखनीय है कि ये चार महाआजनेय पशु अशोक के सारनाथ शीर्षक पर अंकित हैं, वहाँ गरुड़ की जगह सिंह है। इन चार पशुओं की देवरूप में मान्यता सिन्धुघाटी से लेकर आज तक लोक में चली आई है जैसा हमने विस्तार से अपने 'चक्रध्वज' नामक ग्रन्थ में सप्रमाण उल्लेख किया है।

नागदेवता, कुमार—स्कन्द—विशाख—गृह (स्कन्द के इन चार रूपों की चतुरात्मा कहा गया है। ऋतुएं, स्कन्द के पार्श्वचर, रुद्र के पार्श्वचर, यम के पार्श्वचर, काल, पास, ज्वरव्याधीश्वर, वायु, अग्नि, सूर्यपत्नी, सुवर्चला, उच्चास, मरुत देवता, पर्वत देवता, अभीष्ट नदी देवता, सप्तर्षि, समुद्र, द्वीप (समुद्र और द्वीपों का यह उल्लेख गुप्ताकालीन सामुद्रिक व्यापार की भावना का संकेत करता है। पूर्व और पश्चिम के समुद्रों में अथवा द्वीपान्तर के अनेक द्वीपों में जिसे जो अभीष्ट होता था, वह अपने व्यापार के लिये उसी का ध्यान करता था) सप्तपाल, सप्तलोक, सप्तगंगाए, सप्तसरस्वती, सप्तयज्ञ, आदित्य, इन्द्रपुत्र जयन्त अष्टवसु, एकानंशा, महादेव, वीरभद्र, नन्दीश्वर, लगुडेश या लकुलीश्वर, धर्म एकादश रुद्र बारह आदित्यजलाधिप वरुण, इन्द्र, विष्णु, कामदेव, यक्ष, राक्षस, शंख, पद्यम, मणिभद्र, पितृगण, नवग्रह, नक्षत्र, द्वादशमास, कार्तिकेय, वनस्पति।

इस प्रकार लगभग वर्ष भर के लिये अपने ईष्टदेवों की आराधना या व्रतपालन का एक क्रम बताया गया है।²⁴³ मत्स्यपुराण में लोक देवताओं का एक भरा पूरा चित्र उस सूची से भी प्राप्त होता है, जिसमें लगभग 200 देवियों के नाम किसी पुराण लेखक ने बड़े परिश्रम से एक किये हैं। जो इस प्रकार हैं²⁴⁴ — माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, मालिनी, सौपणी वायव्या, शाक्री, नैर्ऋतो, सौरी, सौम्या, शिवा, दूती, चामुण्डा, वारुणी, वाराही नारसिंही, बला, अतिबला, रक्ता, सुरभी, मुखमण्डिका, मातृनन्दा, सुनन्दा, विडाली, शकुनी, रेवती, महारक्ता, पिलपिच्छिका, जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, काली, महाकाली, दूती, सुभगा दुर्भगा, कराली, नन्दिनी, अदिति, दिति, मारी, मृत्यु, कर्णमोटी, ग्राम्या, उलूकी, धरोदरी, कपाली, वज्रहस्ता, पिशाची, राक्षस, भुशुण्डी, शांकरी, चण्डा लांगली, कुटभी, खेटा,

सुलोचना, धुम्रा, ऐकवीरा, करालिनी, विशालदंष्टिनी, श्यामा, तिजटी, कुक्कुटी, वैनायकी, वैताली, उनमत्तोदुम्बरी, सिद्धि, लेलिहाना, केकरी, गर्दभी, भृकुटी, बहुपुत्री, प्रेतयाना, विडम्बिनी, कौञ्चा, शलमुखी, विनता, सुरसा, दनु, उषा, रम्भा, मेनका, सलिला, चितरूपिणी, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारा, धृति, कपर्दिनी, माया, विचित्ररूपा, कामरूपा, संगमा, मुखेविला, मंगला, महानासा, महामुखी, कुमारी, रोचना, भीमा, सदाहा, मदोद्धता, अलम्बाक्षी, कालकर्णी, कुम्भकर्णी, महासुरी केशिनी, शंखिनी, लम्बा, पिंगला, नसेहितसमु, घष्टारवा, द्रष्टाला रोचना, काकजंकिका, अजमुखिका, महाग्रीवा, महामुखी, उल्कामुखी, धूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी, मोहना, कल्पना, क्ष्वेला, निर्भया, वाहुशालिनी, सर्पकर्णी, एकाक्षीविशोका, नन्दिनी, ज्योत्स्नामुखी, रभसा, निकुम्भा, रक्तकल्पना, अविकारा, महाचिता, चन्द्रसेना, मनोरमा, अदर्शना, हरत्पापा, मातङ्गी, लम्बमेखला, अवाला, वञ्चना, काली प्रमोदा, लाङ्गलावती, चित्रा चित्रजला, कोणा, शान्तिका, अधविनाशिनी, लम्बस्तनी, लम्बसता विसटा, वासचूणिनी, स्थलन्ती दीर्घकेशी, सुचिरा सुन्दरी, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधिनी, अषनी कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बालमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, सवासवी, शंकुकार्णी, महानादा, महादेवी, महोदरी हुंकारी, रूद्रसुसृष्टा, रूद्रेशी, भुतडामरी, पिण्डजिह्वा, चलज्जला, ज्येष्ठा।

महाभारत के आरण्यक पर्व में लोक देव सूची प्राप्त हुई है, इस पर्व में लोक की कुछ छोटी देवियों के नाम की सूची इस प्रकार है। काकी, हलिमा, रूद्रा, वृहली, पलाला, आर्या मित्रा है।

इन बातों को बच्चों की माताएं कहा गया है और इसके एक पत्र को, जो स्कन्द की कृपा से उत्पन्न हुआ लोहिताक्ष नाम दिया है।²⁴⁵ पुराणों में और भी कई सूचियां मिलती हैं। इन देवों की पूजा का उल्लेख कई दृष्टियों से है। कहीं इन्हें 'विभूति' कहा गया है, कहीं इनके व्रत का उल्लेख है, कहीं भक्ति कहीं जैसा उपर कहा गया है, इन्हे रोच यह संज्ञा प्रदान की गयी है। इसी प्रकार वामन पुराण के प्रवरानुकीर्तन में एक सूची है। जिसमें प्रत्येक जाति के प्रवर या श्रेष्ठ व्यक्ति का तत्व का उल्लेख करते हुये अनेक देवी देवताओं का भी परिगणन किया गया है।

प्राकृत ग्रन्थ अंगविज्जा में देवी देवताओं की दो सूचियाँ जैन ग्रन्थ में आई हैं। यह पुस्तक महाराष्ट्री प्राकृत भाषा में है और लगभग कुषाणकाल की है। पहली सूची जो देवताविजय अध्याय में है,²⁴⁶ इस प्रकार है — मख्व, गन्धर्व, पितर प्रेत, वसु, आदित्य, अश्विन, सरस्वत, अप्सरा, वैश्रवण, नक्षत्र, ग्रह चन्द्र, तारा, बलदेव वासुदेव, शिव, स्कन्द, विशाख अग्नि मात, सागर, नदी, अग्नि, इन्द्राग्नि, ब्रह्मा, उत्तम मञ्जिम पंचवर (प्रत्यवर अर्थात् निचले देवता) आर्य देवता, म्लेच्छ देवता, उपेन्द्र गिरि, यम, वरुण, सोम रात्रि दिवस, श्री, ऐराणी, पृथिवी, एकनंशा, नवमृगा, सुरादेवी, नागी, असुर, सुपर्ण, द्वीपकुमार, समुद्रकुमार, दिशाकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार स्तनितकुमार, विधुतकुमार, पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, चन्द्रसूर्य, ग्रहगण, नागी, सेणावती, वह्वी, राक्षसी, पिशाची, भूतकथा, गन्धर्वकन्या, किन्नर, किन्नरी, यक्षिणी, वनस्पतिकन्या, पर्वत देवता, समुद्र नदी कूप, तडाग, पल्लवदेवता, वर्चसदेवता, उक्कुरुडिकदेवता।

इस प्रकार एक विस्तृत पृष्ठभूमि में सब प्रकार के देवी देवताओं की गिनती की गयी है। ऐसे ही अध्याय 58 में देवों की सूची है। जैसे —

वैश्रवण विष्णु, रुद्र, शिव, विशाख, स्कन्द, कुमार, ब्रह्म, बलदेव, वासुदेव, प्रद्युम्न, पर्वत, नाग, सुपर्ण, नदी, आर्या, ऐराणी, मातृका, शकुनि, एकानंशा, श्री, बुद्धिद्व मेधा, कीर्ति सरस्वती यक्षी राक्षसी अप्सरा, गिरिकुमारी समुद्र, समुद्र कुमार, समुद्र कुमारी, द्वीपकुमार, द्वीपकुमारी, ब्याघ्र सिंह, हस्ति, वृषभ, चन्द्र, आदित्य, ग्रह नक्षत्र, तारागण, मारुत, वातकन्या, यम, वरुण, सोम, इन्द्र, पृथ्वी दिशा, कुमार, ब्रह्मा, श्री, मेधा, बुद्धि, कुलदेवता, वास्तुदेवता, वर्चस्देवता, श्मशानदेवता, पितृदेवता विद्याधर, विद्यासिद्धि, चारण विद्याधरी सर्वविद्या देवता, देवविद्या देव विद्याधि पति महर्षि।

इनके अतिरिक्त देवता ध्याय में जो पहले कह चुके हैं उसके अनुसार देवताओं की कल्पना करनी चाहिये। इनमें कुछ दिव्य कुछ मानुषी कुछ साधारण हैं।²⁴⁷

वायुपुराण में देवियों की एक सूची आयी है जो इस प्रकार है —²⁴⁸ स्वाहा

स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती, अपर्णा, एकपर्णा, पाटला, उमा, हैमवती, षष्ठी, कल्याणी, ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा, गौरी, आर्या, प्रकृति, नियता, रौद्री दुर्गा, भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती, भूतनायिका, गौतमी, कौशिकी चण्डी, कात्यायनी,

सती, कुमारी, यादवी, वरदा, वहिर्ध्वजा, शूलधरा, परमब्रह्मविचारिणी, माहेन्द्री, इन्द्रभगिनी, वृषकन्या, एकवसना, अपराजिता, सिंहवाहिनी, एकनंशा, माया, महिषमर्दिनी, भद्रकाली। यहां स्पष्ट कहा है कि यथार्थ में दो ही महादेवियां हैं एक प्रज्ञा अर्थात् सरस्वती और दूसरी श्री या लक्ष्मी किन्तु लोक में इन्हीं दोनों के रूपों में सहस्रों देवियां फैली हुई हैं।

‘महादेवी कुले द्वेतु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्त्यते

आभ्यां देवी सहस्राणि दैव्यपिमखिलं जगत।।

काश्यपसंहिता के रेवती कल्प में भी लगभग कुषाणकालीन देवियों की एक अच्छी सूची पाई जाती है।²⁴⁹ रेवती, जातहारिणी, पिलिपिच्छका, रौद्री वारुणी, उग्ररेवती, शुष्क रेवती, कटम्भरा, विकुटा, दारुणा मोहिनी, स्तम्भनी पोषणा नाकिनी, पिशाची, यक्षी, वारुणी, षष्ठी, भीरुका, याम्या, मातंगी, भद्रकाली, रौद्री वर्धिका असाध्या पुंव्यजनी, पौरुषादिनी, संदर्श करकोटंकी इन्द्रवडवा वाडवामुखी।

इस प्रकार रेवती कल्प के अन्तर्गत अनेक प्रकार की दिव्य और मानुषी रेवती देवियों की सूची पायी जाती है। उन्हे बच्चों की देवियाँ होने के कारण जात हारिणी संज्ञा दी गयी है। यह भी कहा गया है कि इन देवियों के और भी भेद थे, जैसे प्रत्येक जाति को अलग अलग जातहारिणी देवी थी। इसी प्रकार देश भेद के लगभग 29 प्रकार की जातहारिणी देवियां कही जाती थी, जैसे— सूत, मागध, वेन, कुक्कस, अम्बष्ठ, प्राच्यक, चण्डाल, मुष्टिक, मेद, डौम्ब, उवाक, द्रविड’ सिहल, ओड, खश, शक, यवन, पहलव तुषार, कम्बोज, आवन्तय नेमक, आभरिक, हूण, पार्षक, किरात, शबर, शम्बर।

इस प्रकार अस्तिक निषाद, वर्णसंकर, देशी विदेशी अनेक लोगों की देवियों की मान्यता उस युग में थी, विदेशों के लोग यहाँ आकर समाज में रहते हुये अपनी अपनी देवियों को पूजते रहते थे। इसी प्रकार अलग अलग जाति और पेशों की भी छोटी देवियां थी। उनके नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं।

इस प्रकार पेशेवरों में अपनी अपनी देवियां थी, जिसका सामान्य नाम कारुकी जातहारिणी था। आज तक गाँवां में इन पेशेवरों की अलग अलग माताएं पूजी जाती है। इनके अतिरिक्त शकुनी, चतुस्पदी, सर्पा, मत्सी, वनस्पति में पाँच भेद और बताये गये हैं और इनके भी अनेक उपभेद और रूह कहे गये हैं। इस प्रकार के देवी देवता प्रायः

प्रत्येक देश में पाये जाते हैं और इस देश में भी उनकी संख्या कम न थी। उनमें से कुछ का उल्लेख प्राचीन साहित्य और कला में शेष है। जैसे भरहुत के स्तुप में कुछ यक्ष और देवियों के नाम इस प्रकार हैं – सुपवस, यखो, विरूढक यखो, गंगितयखो, सुचिलोमयखो, कुपिरोयखो, अजकालको यखो, सुर्दसनायखी, चन्द्रायखी, सिरिमा देवता, चुलकोका देवता, महाकोका देवता। प्रस्तुत ग्रंथ में अत्यन्त प्राचीन कुछ लोक देवताओं को चुनकर उनके 'मह' नामक उत्सवों का विशेष अध्ययन किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ एवं पाद टिप्पणियाँ

1. Religions of India Hopkins – P. 11.17^म
2. ऋक् – (पुरुष-सुक्त) का मंत्र
3. ऋक् – 'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भष्यम्।' 10-90-2
4. यास्क-निरुक्त-महाभाग्ययाद देवतायाः एक एवं आत्मा बहूधा स्तुयते
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यगानि भवन्ति। 7-4-8-9
5. ऋक् – 3-7-1
6. ऋक् – 1-139-11, अथ-10-7-13
7. वाज सं० 33-7

8. वैदिक धर्म एवं दर्शन – कीथ – अनु० सूर्यकान्त प्रथम भाग पृष्ठ 72, 74
9. एमहिरियन्ना – भारतीय दर्शन की रूप रेखा– पृ० 29
10. ब्लूमफिल्ड : Religion of the Veda P. 82
11. वहीं पृष्ठ 85, 151
12. ऋक् – त्वमग्ने वरुणों जायते यत्त्व मित्रौ भविष्यत् समृद्धेः। त्वे विश्वे सहस्यपुत्रं देवस्त्वमिन्द्रो दायुधे मर्त्याय ॥
13. ऋग्वेद – 1-105-15
इन्द्र मित्रं वरुण मग्निमाहुरथो दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्र विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मात रिश्वानमाहुः ॥
14. वही पृ०
15. डॉ० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय – बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास पृ० 7
16. ऋक् 4 / 30 / 3 / 5
17. मैक्समूलर – हम भारत से क्या सीखें ? अनु०-कमलाकर तिवारी पृ० 148
18. Barth The Religions of India Page 6 – 12
19. एम० हिरियन्ना – भारतीय दर्शन की रूपरेखा अनु० कमलाकर तिवारी पृ० 36
20. Hopkins – The Religions of India Page 11, 13 etc.
21. डॉ० राजबली पाण्डेय – प्राचीन भारत पृ० 65
22. ऋग्वेद 1 / 164 / 46
23. वही पृ० 3 / 5 / 5
24. Six Systems of Indian Philosophy. Page 40
25. हम भारत से क्या सिखें ? मैक्समूलर – अनु० कमलाकर तिवारी पृ० 144
26. कीथ – वैदिक धर्म एवं दर्शन – प्रथम भाग अनु०सूर्यकान्त 109
27. ऋग्वेद 10 / 90 / 2
28. ऋग्वेद 1 / 89 / 10
29. एम० हिरियन्ना – भारतीय दर्शन की रूपरेखा – पृ० 40
30. निरुक्ता 7 / 4 / 8 / 9

महाभाग्यवाद देवतायाः एक एवं आत्मा बहुधास्तुयते ।
एकस्यात्मनोन्धे देवा प्रत्यंगानि भवन्ति ।।

31. ऋग्वेद – 10/9/29
32. एम0 हिरियन्ना – भारतीय दर्शन की रूप रेखा – पृ0 42
33. ब्लूमफिल्ड – Religion of the Veda Page 12
34. ऋग्वेद – 4/72/3; 4/17/3
35. वहीं 1/71/5
36. वही 1/54/3
37. वही 5/47/7
38. वैदिक देवशास्त्र – अनु0 सूर्यकान्त, पृ0 52
39. “A.L. Basam- The India that was wonder – Page
40. मैक्समूलर – भारत से क्या हम क्या सीखें ? पृ0 183–84
41. “A.L. Basam- The India that was wonder – Page
“A concept which was perhaps the highest flight of Rigvedic thought”
42. कीथ–वैदिक धर्म एवं दर्शन प्रथम भाग अनु0 सूर्यकान्त पृ0 124
43. The cultural Heritage of India Vol. I Page 189
“If Mitra was the god of light and the day. Varuna became his counterpart,
the god of the blue sky or night ”
44. मैकडानल वैदिक देशास्त्र अनु0 सूर्यकान्त पृ0 54
45. मैक्समूलर – भारत से हम क्या सीखें, पृ0 174–75
46. the Rigveda is Indra and he is a purely Indo- The cultural heritage of India –
Vol. I Page
‘By for the most Important god of Aryan god
47. काव्य – वैदिक धर्म एवं दर्शन – अनु0 सूर्यकान्त, पृ0 165
48. मैकडानल – वैदिक देवशास्त्र – अनु0 सूर्यकान्त, पृ0 102
49. ऋग्वेद 4/18/1–2
50. Vedic – Mythology Macdonnel Page 56

51. ऋक् – 3/4/4
52. वही 1/130/9
53. वही 4/18/10
54. वही 10/101/12
55. वही 6/59/3
56. ऋग्वेद 3/49/1
57. ऋग्वेद 10/90/13
58. ऐ०ब्रा० 3/22/7
59. अथर्ववेद 7/38/2
60. जै० बा० 1/162 एवं आगे पं० ब्रा० 13/6/9 एवं आगे
61. ऋग्वेद 2/21/4
62. ऋग्वेद 10/28/3, 10/27/2, 6/17/11
63. ऋग्वेद 7/21/5, 10/99/3
64. ऋग्वेद 5/30/9, 4/19/2
65. ऋग्वेद 2/11/2
66. ऋग्वेद 2/19/3
67. दीर्घ निकाय, 1 पृष्ठ 239, मञ्जिमनिकाय 2 पृष्ठ–200 अंगुत्तर निकाय, 4
68. दीर्घ निकाय, पृ० 237
69. वही पं० 244–245
70. वासुदेव शरण अग्रवाल India as known to Panini पृ० 258–60 महावग्य 1/5
71. महावग्य 1/5/4 दीर्घ निकाय, 1 पृ० 224 संयुक्त निकाय – 1 पृष्ठ–211
अंगुत्तर निकाय 2, पृ० 21; The book of Kindred saving 1 पृ० 289, 298
72. दीर्घ निकाय – महागोविन्द सुत्त, मण्डिमी निकाय 1 पृ० 251, संयुक्त निकाय
4 पृ० 101–2: अंगुत्तर निकाय 3 पृ० 370, 4 पृ० 162
73. The book of Kindred saving 1 पृ० 284, 303, जातक 6 पृ० 127–289
74. धम्मपद, 30

75. जातक, 3 पृ0 146
76. जातक 2, पृ0 123–24 दधिवाहन जातक (186) खरपुत्र जातक (384); जातक (409); 6 पृ0 72, 73
77. सुत्त निपात 2/12/3–4 विमानवत्थ 4/10/10 The book of Kindred saving 1 पृ0 295
78. जातक 2 पृ0 101, 312, 4 पृ0 63, 5 पृ0 383 जातक 3, पृ0 129
79. The book of Kindred savings 1, 301–2, जातक 1 पृ0 204, 6 पृ0 129, 278, 289
80. दीर्घ निकाय 2 पृ0 220 जातक 6, पृ0 97, 126
81. अंगुत्तर निकाय, 3 पृ0 50 विमानवत्थ, 1/13/6, 1/14/6, 2/1/14, 4/2/2, 4/10/10, जातक 6 पृ0 32, 278
82. संयुक्त निकाय 4 पृ0 103 जातक 3 पृ0 222, पृ0 636 पृ0 126
83. जातक, 2, पृ0 254
84. नागुण्ठ जातक (144) संधव जातक (162)
85. एसबीई 13 पृ0 129, 132, सुत्त निपात 3/4
86. थेरीगाथा, 87, जातक 1 पृ0 474, पृ0 1, 163
87. जातक, 1 पृ0 331
88. जातक, 3, पृ0 262
89. वहीं पृ0 261
90. जातक, 6, पृ0 35
91. जातक, 4 पृ0 17
92. जातक, 5, पृ0 392
93. महावग्ग 1/6/30 दीर्घ निकाय 2 पृ0 220–21, मज्झिम निकाय 2, पृ0 194
94. Vedic Index 2 Page 182, तैत्तरिय ब्राह्मण 3/12/3/1 शतपथ ब्राह्मण 14/8/5/1 कोपीतकि उपनिषद 94 केन उपनिषद 15
95. St. Petersburg Dictionary

96. ऋग्वेद 4/3/13
97. Pali Text Society (P.T.S.) Dictionary
98. विमानवत्थ – अट्टकथा 224, 333
99. संयुक्त निकाय 1 पृ0 205 पेतवत्थु अट्टकथा 113/139 पेट्वत्थ 4/1
100. वही 4/10 चरियापिटिक 4/3
101. दीघ निकाय, 1, पृ0 95
102. उदान, 4/4
103. जातक, 1, पृ0 395–96
104. जातक, 2 पृ0 127, एक अन्य यक्षनगर एक द्वीप में वसा था (जातक, 1 पृ0 240)
105. जातक, 1 पृ0 399
106. जातक, 2 पृ0 16
107. संयुक्त निकाय, 1, पृ0 206–7। सुत्त निपात 2/5 एसबीई 30 पृ0 219
108. जातक, 1, पृ0 425, 5 पृ0 115
109. वही एसबीई 22 पृ0 92
110. संयुक्त निकाय 1, पृ0 206 सुत्त निपात, 2/5 उदान 1/7, The book of kindred saying 1 पृ0 262–66
111. संयुक्त निकाय, 1, पृ0 206 सुत्त निपात 2/5
112. संयुक्त निकाय, 1, पृ0 206
113. वही, पृ0 208
114. उदान, 1/7
115. ऋग्वेद 1/32
116. महाभारत–सभापर्व 11/9
117. अंगुत्तर निकाय, 2, पृ0 72
118. उदाहरणार्थ – जातक, 1, पृ0 498, 2, पृ0 149
119. एसबीई, 29 पृ0 128–29, 201–2: 328–30

120. जातक, 1, पृ0 498
121. Vedic Index 1, पृ0 33
122. वही, पृ0 43
123. वही, पृ0 531
124. अथर्ववेद, 5/3/4
125. ऐतरेय-ब्राह्मण, 7/30-33, 8/16
126. छांदोग्य – उपनिषद 8/5/3 कौषीतक उपनिषद 1/3
127. मार्शल सर जॉन Mohan Jodaro and Indus. civilization पृ063-67
128. **1143** Indian Historical Quarterly
129. जातक 1, पृ0 249, 328, 412, 425 पृ0 440
130. वही, 1 पृ0 170, पृ0 206-372-73 3, पृ0 137, 207, 4, पृ0 11, 5 पृ0 378
131. शिलालेख, 34, स्तम्भ लेख 2, 7
132. शिलालेख, 6
133. शिलालेख, 10
134. जातक, 4, पृ0 11
135. स्तम्भ लेख, 3
136. जातक, 2 पृ0 192
137. जातक, 3, पृ0 87-89
138. जातक, पृ0 158, 212
139. अंगुत्तर निकाय, 2, पृ0 79 इतिवृतक 106
140. अंगुत्तर निकाय, 2, पृ0 70
141. अंगुत्तर निकाय, 2 पृ0 70 इतिवृतक पृ0 106
142. अंगुत्तर निकाय, 2 पृ0 70 इतिवृतक पृ0 106
143. जातक, 1, पृ0 202
144. जातक, 3, पृ0 120

145. अंगुतर निकाय 4, 393, 94 सुत्त-निपात 20
146. जातक, 4, पृ0 237
147. वही, 1, पृ0 227
148. वही पृ0 227
149. अंगुतर निकाय 4, पृ0 241, थेरगाथा 532
150. जातक वहीं पृ0 132
151. वही 1, पृ0 231, 262, 5, पृ0 383, 3, पृ0 129, सो चतुसुनगर छोरस नगर मण्ड्रे निवेसनद्वारति छसु ठानेषु दाना सालाकारेत्वा दान पक्तेसि
152. पाणिनी काल में लोग देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनाकर अपनी आजीविका चलाते थे, गोपीनाथ, एलीमेंटस ऑव हिन्दू इकोनोग्राफी, भूमिका।
153. ज्ञातृ धर्मकथा 8, पृ0 900 व्याख्याप्रज्ञप्ति 3। 11 निशीथचूर्णी 8-14 में इन्द्र स्कन्द, रूद्र, मुकुन्द, भूत, यक्ष, नाग, स्तूप, चैत्य, वृक्ष गिरि, दरि, अगड, तडाग हृद, नदी, सर सागर और आकर मह का उल्लेख है।
154. हॉपकिन्स इपिक, माइथोलोजी पृ0 135। तुलना की वृहत्कल्पभाष्य 18/56-59 एवं महाभारत वन पर्व 240-246।
155. कल्पसूत्र 2/26, अनन्त कृदृशा 3, पृ0 12 में भी हरिणोगमेषी का उल्लेख है।
156. 1/131
157. आवश्यकचूर्णी पृ0 21-31 एवं हॉपकिन्स वहीं 125 पुसालकर, भासः ए स्टडी अध्याय 19 पृ0 440, जिल्द 8 पृ0 144 से 153, महाभारत 1/64/33 तथा वासुदेवशरण अग्रवाल, रंगस्वामी एयंगर कमोमेरेशन वॉल्युम, पृ0 480
158. निशीथ 1/9/60-65
159. निशीथ सूत्र 19/11-12 तथा भाष्य।
160. ज्ञातृ धर्मकथा 1, पृ0 25 में (इन्द्रलष्टि) का उल्लेख है तथा व्याख्याप्रज्ञप्ति 9 से 6 तथा महाभारत 6/49/12। वज्रपाणि, इन्द्रप्रतिमा का उल्लेख धम्मपाद अट्टकथा 1 पृ0 280 में आता है।
161. उत्तराध्ययनटीका 8, पृ0 136

162. वृहत्कल्पभाष्य 4, 51–52 ।
163. अन्तःकृद्दशा 6, पृ0 40
164. निशीथचूर्णी 19/60–68
165. आवश्यकचूर्णी 2, पृ0 184
166. महाभारत 2/35/4 एवं 9/45 में
167. हॉपकिन्स, वही पृ0 226
168. आवश्यक चूर्णी पृ0 315
169. वही पृ0 115
170. वृहत्कल्पभाष्य 2/34/65–73
171. हॉपकिन्स, वहीं, पृ0 163 रुद्र शिव की कल्पना के विकास के लिये देखिये भंडारकर वैष्णविज्य, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टिम पृ 102 आदि
172. व्यवहार भाष्य 6/313 पृ0 55 अ
173. हॉपकिन्स, वही पृ0 212
174. आवश्यक निर्युक्ति 481, आवश्यक चूर्णी पृ0 214
175. देखें प्रजिलुस्की नान आर्यन लोन्स इन इण्डो आर्यन लेख व प्री आर्यन एलीमेन्टस इन इण्डियन कल्चर, अतुल के0 सुर कलकत्ता रिव्यू, नम्बर 28, जै0भा0, पंजाब एण्ड नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्स जिल्द 1, पृ0 260 ।
176. हॉपकिन्स, वही, पृ0 219–26
177. आवश्यक चूर्णी 2, पृ0 175 आदि ।
178. आवश्यक निर्युक्ति 509 ।
179. आवश्यक चूर्णी, पृ0 312 । वृहत्कल्पभाष्य 5, 5928 में ढोढशिवा को अचित विंव का उदाहरण बताया गया हैं। हिंगुशिव के कथानक के लिये देखिये दशवैकालिक चूर्णी पृ0 47
180. वृहत्कल्पभाष्य पीठिका 804 की चूर्णी, फुट नोट
181. वृहत्कल्पभाष्य 3/44/87
182. हॉपकिन्स वहीं, पृ0 142–48

183. जीवाभिगम 3, पृ0 289
184. देखिये हाडी, मैनुअल ऑव बुद्धिज्म पृ0 45 तथा राइस डेविस बुद्धिस्ट इंडिया, पृ0 220 आदि अतुल के सुर कलकत्ता रिब्यू नवम्बर दिसम्बर 1932 पृ0 299 डाक्टर फोगले, इंडियन सर्पेण्ट लोर पृ0 1 आदि।
185. उत्तराध्ययन चूर्णी पृ0 89
186. आवश्यक चूर्णी पृ0 281
187. वृन्दावन का प्रसिद्ध यग्रोथ वृक्ष भांडीर के नाम से ही विख्यात है, महाभारत 11/53/8
188. अभिराजेन्द्रकोष, जक्खगुहा
189. उत्तराध्ययनटीका 18 पृ0 263 अ
190. वही, पृ0 242
191. विपाकसूत्र 3, पृ0 20
192. वही 5, पृ0 32
193. वही 8, पृ0 45
194. वही 9, पृ0 49
195. आवश्यक चूर्णी पृ0 468
196. निशीथ चूर्णी 10, 3200
197. मूल सर्वास्तिवाद के विनय वस्तु (पृ0 12) में गले में घंटीवाले यक्ष का उल्लेख है, गिलगित मैनुस्क्रिप्टस जिल्द 3, भाग 2 तथा देखिये महा0
198. आवश्यक चूर्णी 2, पृ0 226 आदि
199. व्यवहारभाष्य 6, पृ0 313 आवश्यक चूर्णी 2, पृ0 226 वृहकल्प भाष्य 2, 12-19
200. दशवै कालिक चूर्णी, पृ0 48
201. वृहकल्पभाष्य 4, 49-63
202. वही 3, 46-69
203. वही, 1, 31-50
204. खारवेल के हाथी गुफा शिलालेख में इसका उल्लेख है।

205. वृहत्कल्पभाष्य 3, 23–42
206. उत्तराध्ययन सूत्र 36, 206
207. आवश्यक चूर्णी पृ० 249
208. वहीं पृ० 490 तुलना कीजिये अयोधर जातक (590) 4, पृ० 80–1 रामायण 5/24
209. अधेनिर्युक्ति टीका पृ० 156 अ तुलना कीजिये हॉपकिन्स वही पृ० 147 आदि। तथा देखिये कथा सरित्सागर 1, परिशिष्ट 1
210. वृकल्पभाष्य 4.55.25 आदि
211. वी०आ० दीक्षितार इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टली पृ० 440 आदि सितम्बर 1938, कुमार स्वामी यक्षाज पृ० 18 हॉपकिन्स वही पृ० 32–60
212. व्याख्या प्रज्ञापित 1 उत्थान पृ० 6 वृहत्कल्पभाष्य 1/1664 तथा देखिये रोज ट्राइब्स एण्ड कारटूस आदि जिल्द 1 पृ० 154
213. अभिधान चिन्तामणि 4/60 निशीथ चूर्णी 12/19–41 में लोग समवायठाण आयतर्ण और पडिमागिहं चेतिय का उल्लेख है
214. विपाक सूत्र 2, पृ० 12
215. वहीं 6, पृ० 35
216. वहीं 10, पृ० 56
217. उत्तराध्ययनटीका 9, पृ० 142
218. उत्तराध्ययन पृ० 49
219. आवश्यक चूर्णी, पृ० 281
220. वृन्दावन का प्रसिद्ध अग्रोध वृक्ष भांडीर के नाम से प्रसिद्ध है।
221. महाभारत 11/53/8
222. अभिराजेन्द्रकोष, जयखगुहा
223. उत्तराध्ययन टीका 18, पृ० 239 अ
224. वही पृ० 242
225. अथर्वदेव, 11/6/1–23, पापमोचन सूक्त

226. अथर्वेद 5/1/109
227. हरिवंश 2/15/5
228. हरिवंश पुराण 2/17/11
229. हरिवंश पुराण 2/16/10
230. हरिवंश पुराण 2/16/9
231. सूत्र 5/1/109
232. वही
233. वही
234. मानवगृह्य सूत्र 2/14
235. विराट पर्व 12, आदि पर्व 152/18
236. आदि पर्व, 211/2
237. वही
238. मज्झिम निकाय, 1/388
239. भगवद्गीता 9/23
240. गीता अध्याय 10, विभूतियोग
241. वि०धर्मोत्तर पुराण 3/222-28
242. वि०धर्मोत्तर पुराण 3/221, 7
243. वि०धर्मोत्तर पुराण 3/222/1-107
244. मत्स्यपुराण - 179/10-32
245. आरण्यक पर्व, 217/9-10
246. अंगविज्जा 51 पृ० 274
247. अंगविज्जा 51 पृ० 223-27
248. वायुपुराण 9/85-98
249. काश्यप संहिता रेवती कल्प पृ० 153-62

